अंक : 1, जून 2012

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
जून 2012, अंक 1

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० के द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004, फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geag_india@yahoo.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज, 2nd ब्लाक, 3rd स्टेज,
बनशंकरी, बैंगलोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512, +91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : amebang@giasbg01.vsnl.net.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंगलोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक : के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन
प्रबन्ध सम्पादक : टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
अरूण कुमार शिवाराय, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
एम० शोभा मइया, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
राजेश गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, इण्डोनेशियन, पश्चिमी अफ्रीकन, ब्राज़ीलियन एवं चाइनीज़ संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया एवं तेलगू

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

प्रिय पाठक

मिजेरियर, जर्मनी के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित जून, 2012 लीज़ा हिन्दी अंक प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता हो रही है।

सामान्यतः कृषि ऋण वृहद् कृषकों से सम्बन्धित हो जाता है, क्योंकि यह धारणा है कि केवल व्यवसायिक खेती में ही वित्त की आवश्यकता होती है, लेकिन वास्तविकता यह है कि बहुतायत में छोटे किसानों को भी एक निश्चित जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए ऋण की आवश्यकता होती है। विकास अभिकरणों तथा औपचारिक संगठनों द्वारा बहुत से ऐसे प्रयास किये गये हैं, जिनके माध्यम से सफलता के कई माडल स्थापित हुए हैं। इन स्थितियों को सफलतापूर्वक सम्बोधित करने वाले मायराडा और ए.पी.एम.ए.एस. के कई अनुभवों को इस अंक में समाहित किया गया है। साथ ही पारिस्थितिकी कृषि में पशुओं के महत्व एवं परम्परागत पानी संरचना को पुर्नस्थापित करने के प्रयास को भी प्रमुखता दी गयी है।

आशा है, इस अंक का अध्ययन कर आप लाभान्वित होगें। हम लोग आपकी प्रतिक्रिया के आकांक्षी हैं। आप अपने विचारों, मतों, निरीक्षणों को वेब, डाक या ई–मेल के द्वारा हमें प्रेषित कर सकते हैं। यदि आप यह चाहते हैं कि आपका कोई कृषक मित्र इस पत्रिका को पढ़ना चाहता है, तो कृपया आप उनका पूर्ण पता भेजें। इस पत्रिका को उन्हें भेजने में प्रसन्नता होगी।

लीज़ा इण्डिया टीम
जून, 2012

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपना उत्पादन और आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही वाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

बाढ़ के साथ जीवन यापन स्थानीय समुदाय की..... 5

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप

न सिर्फ खेती को वरन् जीवन एवं आजीविका को भी प्रभावित करने वाली बाढ़ जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों से उबरने हेतु स्थानीय समुदायों में हमेशा से ही सरल तरीके पाये गये हैं। सदियों से लोगों ने इस प्राकृतिक घटना से अनुकूलन स्थापित करने के लिए बहुत से तरीकों और माध्यमों को विकसित किया है और बाढ़ स्थितियों के साथ जीवन–यापन करने की कला सीखी है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गाँव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–www.amefound.org

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्धान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी०ई०ए०जी० ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

उत्पादकता के ओएसेस : लघु जल संभरण विकास की एक कहानी 7

के0 राघवेन्द्र राव

ह्रास हो रहे पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ाने एवं ग्रामीण जनों के लिए आजीविका के विविध अवसरों के निर्माण तथा स्थाई पारिस्थितिकी निर्माण हेतु लघु स्तर पर जल संभरण को विकसित करना एक व्यवहारिक रास्ता है। असीमा ट्रस्ट ने इसे महाराष्ट्र के आदिवासी गांवों में एक छोटे से क्षेत्र 14 एकड़ मे कर दिखाया है।

लघु, सीमान्त किसान स्वतंत्रता और विकल्प चाहते है न कि वित्तीय समावेश 11

अलॉयसिस प्रकाश फर्नान्डीज

छोटे किसानों को अपने परिवार की आजीविका सुदृढ़ करने हेतु विविध गतिविधियों के लिए कर्ज और अन्य सहायक सेवाओं की आवश्यकता होती है। स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह इस कार्य के लिए बहुत ही उपयुक्त संस्थान है, जो एक गरीब किसान परिवार को अपनी आजीविका रणनीति विकसित करने के लिए आवश्यक स्थान, संसाधन और क्षमता प्रदान करता है।

स्वयं सहायता समूहों और संघों का स्व नियमन/शासन 15

एस0 रामा लक्ष्मी

स्वयं सहायता समूह और उनके संघ पूरे भारत में एक आन्दोलन के तौर पर जाने जा रहे हैं। इस आन्दोलन से होने वाले लाभों को स्थाई बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वे समग्र रूप से आत्मनिर्भर हों और उनके पास सम्पूर्ण स्वामित्व हो। इसका अर्थ यह है कि उत्प्रेरक संस्थाएं अपनी भूमिका को कम करते हुए धीरे–धीरे वहां से अपने–आपको वापस कर लें। स्वयं सहायता समूह और उनके संघ यह सुनिश्चित करेंगे कि उनके स्व नियमन, ढांचागत रूपरेखा, कियान्वन और व्यवस्थापन की सभी प्रक्रियाएं महिलाओं द्वारा की जायें।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, जून 2012

5 बाढ़ के साथ जीवन यापन : स्थानीय समुदाय की अनुकूलन रणनीति
जी0ई0ए0जी0

7 उत्पादकता के ओएसेस : लघु जल संभरण विकास की कहानी
के0 राघवेन्द्र राव

10 जीवाश्म/ह्यूमस मृदा जल संरक्षण की कुंजी
एल. नारायण रेड्डी

11 लघु, सीमान्त किसान स्वतंत्रता और विकल्प चाहते है न कि वित्तीय समावेश
अलॉयसिस प्रकाश फर्नान्डीज

15 स्वयं सहायता समूहों और संघों का स्व नियमन/शासन
एस0 रामा लक्ष्मी

18 चारा समस्या का पुनर्मूल्यांकन
मोना धमंकर

चारा समस्या का पुनर्मूल्यांकन 18

मोना धमंकर

पशुपालन पर आधारित आजीविका वाले लघु किसानों के सामने पशुओं के लिए पर्याप्त चारे की उपलब्धता बनाये रखना एक कठिन चुनौतीपूर्ण कार्य है। परम्परागत रूप से, चारे की उपलब्धता और गुणवत्ता में सुधार के प्रयासों हेतु तकनीक पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, लेकिन चारा अभिनव परियोजना यह प्रदर्शित करता है कि विभिन्न तथ्यों के बीच सुदृढ़ बात–चीत भी बेहतर परिणाम लाता है।

यह अंक...

हिन्दी अनुवादित लीज़ा इण्डिया का यह अंक वर्तमान में आपदा, जलवायु परिवर्तन एवं परम्पराओं के संरक्षण पर आधारित है। मौसम परिवर्तन के कारण आपदाओं की तीव्रता एवं आवृत्ति भी बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में स्थानीय संसाधनों के साथ लोगों की अनुकूलन क्षमता को बेहतर बनाने एवं स्थानीय स्तर पर उपलब्ध मृतप्राय हो चुके संसाधनों को पुनः जीवित बनाने के किसानों और स्वयंसेवी संगठनों द्वारा किये जा रहे प्रयास निश्चित तौर पर अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय हैं और आज के समय में इनके प्रसार की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि बड़े पैमाने पर लोग इन अनुभवों से लाभ उठा सकें।

उपरोक्त संदर्भों को व्याख्यायित करता लेख ''बाढ़ के साथ जीवन–यापनःस्थानीय समुदाय की अनुकूलन रणनीति'' गोरखपुर एन्वायरमेण्टल एक्शन ग्रुप द्वारा ऐसे ही अनुभवों को लेकर लिखा गया है। लेख के माध्यम से प्रदर्शित गतिविधियां स्पष्ट करती हैं कि यदि आपदा पूर्व तैयारी की जाये तो नुकसान का प्रतिशत कम हो जाता है, साथ ही समस्या के समाधान के कुछ स्थाई विकल्प भी हो सकते हैं, जिन्हें समुदाय अपने अनुभवों एवं परम्परागत ज्ञान से सीखता है। पत्रिका का दूसरा लेख के0 राघवेन्द्र राव द्वारा लिखित ''उत्पादकता के ओएसेस : लघु जल संभरण विकास की एक कहानी'' महाराष्ट्र के सुदूर गांवों में काम करने वाली एक संस्था असीमा ट्रस्ट के अनुभवों पर आधारित है। इस लेख के माध्यम से स्पष्ट परिलक्षित है कि छोटे स्तर पर किये गये प्रयास भी मौसम की बदलती तस्वीर के साथ अनुकूलन स्थापित करने में सक्षम हो सकते हैं। लघु, सीमान्त किसानों की आजीविका को सुदृढ़ करने में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका को रेखांकित करता लेख ''लघु सीमान्त किसान स्वतंत्रता और विकल्प चाहते हैं न कि वित्तीय समावेश'' में उल्लिखित किया गया है कि इन किसानों को सिर्फ सम्पत्ति अर्जन के लिए ऋण नहीं चाहिए, वरन् उसे स्थाई बनाये रखने के लिए ऋण व ज्ञान/जानकारी की भी आवश्यकता होती है और गांव स्तर पर बने स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से यह बखूबी किया जा सकता है, जबकि एस0 रामालक्ष्मी द्वारा लिखित चौथा लेख ''स्वयं सहायता समूहों और संघों का स्वनियमन/शासन'' भी कमोबेश इसी अवधारणा पर आधारित है। लेखिका का मानना है कि स्वयं सहायता समूहों व उनके संघों को स्थाईत्व प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि स्वयंसेवी संगठन अपनी भूमिका को सिर्फ फैसिलेटेटर तक ही सीमित रखें और समूहों व उनके संघों को स्व नियमन के लिए उत्प्रेरित करें ताकि महिलाओं की भूमिका व उनकी आजीविका का स्थाईत्व सुनिश्चित हो सके।

कृषि की सहयोगी गतिविधि पशुपालन पर आधारित इस अंक का अन्तिम लेख ''चारा समस्या का पुर्नमूल्यांकन'' एक स्वतंत्र विकास सलाहकार सुश्री मोना धमंकर द्वारा लिखा गया है। सुश्री धमंकर ने इस लेख के माध्यम से पशुपालन में सबसे बड़े बाधक चारा उपलब्धता की समस्या को रेखांकित करते हुए इसके समाधान के कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं ताकि ग्रामीण आजीविका के स्थाईत्व के साथ–साथ समुदाय की पोषकता भी सुनिश्चित हो सके।

अन्त में, पत्रिका का नव अंक नवीन विचारों एवं लेखों के माध्यम से आपको जागृत करने के लिए प्रस्तुत है। आपके सुझावों एवं उपयोगी विचारों की प्रतीक्षा रहेगी।

• सम्पादक मण्डल

आवर्ती बाढ़

बाढ़ के साथ जीवन यापन
स्थानीय समुदाय की अनुकूलन रणनीति

न सिर्फ खेती को वरन् जीवन एवं आजीविका को भी प्रभावित करने वाली बाढ़ जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों से उबरने हेतु स्थानीय समुदायों में हमेशा से ही सरल तरीके पाये गये हैं। सदियों से लोगों ने इस प्राकृतिक घटना से अनुकूलन स्थापित करने के लिए बहुत से तरीकों और माध्यमों को विकसित किया है और बाढ़ स्थितियों के साथ जीवन–यापन करने की कला सीखी है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप

पूर्वी उत्तर प्रदेश की भौगोलिक स्थितियों के कारण बाढ़ की दृष्टि से यह क्षेत्र प्रकृतया बहुत ही संवेदनशील है। तराई क्षेत्र होने के कारण यहां पर नदियों का विस्तृत जाल बिछा हुआ है। ये नदियां नेपाल की पहाड़ियों से निकली हुई हैं और अपने असंयत व्यवहार के लिए जानी जाती हैं। नेपाल में भारी बारिश के कारण अचानक यहां की नदियों में पानी का स्तर बढ़ जाता है। पहाड़ों से अधिक मात्रा में पानी नीचे की तरफ आकर चारों तरफ फैल जाता है। अन्य स्थानों की तुलना में पूर्वांचल में ढलवां और नीची भूमि अधिक होने के कारण यहां पर पानी का दबाव अधिक पड़ता है और बाढ़ आ जाती है। जलवायुविक परिस्थितियों में हो रहे परिवर्तन ने इन समस्याओं को और बढ़ाया है। पिछले कई दशकों से, पूर्वांचल में प्रत्येक 3–4 वर्षों में बाढ़ की आवृत्ति एवं भयावहता में वृद्धि हुई है। यहां पर यह वर्ष में आने वाली एक नियमित आपदा है जिससे लोगों की आजीविका बड़े पैमाने पर प्रभावित होती है। इस वृद्धि को बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने जलवायु परिवर्तन से जोड़ दिया है।

दरअसल, पिछले कुछ वर्षों में पूर्वी उत्तर प्रदेश की जलवायु में एक निश्चित परिवर्तन आया है। उदाहरण के लिए यहां गर्मियों के दिनों में लम्बी अवधि तक तापमान का 45 डिग्री सेल्सियस के ऊपर पहुंचना एक सामान्य बात हो गयी है। इसी प्रकार तापमान बढ़ने से ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं और नदियों के जलस्तर में वृद्धि हो रही है। दूसरी तरफ मानसून अवधि में भी उल्लेखनीय बदलाव दिख रहे हैं। वर्तमान में बारिश का समय बहुत ही अप्रत्याशित हो गया है। जबकि पहले, सामान्यतः बाढ़ अगस्त–सितम्बर में ही आती थी। आज ऐसा नहीं है। वर्ष 2007 में, जुलाई माह में भारी बारिश के कारण यहां पर बाढ़ की स्थिति बनी, जिसका कोई अंदेशा नहीं था परिणामस्वरूप लोगों को पूर्व तैयारी के लिए बहुत ही कम समय मिला और भारी मात्रा में जान–माल का नुकसान हुआ।

पूर्वी उत्तर प्रदेश का बहुत बड़ा हिस्सा नियमित रूप से बाढ़ से प्रभावित रहता है, जो न केवल यहां रहने वाले लोगों की आजीविका को बाधित कर रहा है, वरन् उन्हें बहुत हद तक मनोवैज्ञानिक रूप से भी प्रभावित कर रहा है। बरसात के दौरान, बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में

फोटो : जी0ई0ए0जी0

जल निकासी सुदृढ़ीकरण कार्य प्रगति पर

वास्तविक बाढ़ आने से पहले भी बहुत दिक्कतें झेलनी पड़ती हैं। सरकारी और विकासात्मक संगठनों ने इन स्थितियों से निपटने की कोशिश की है, लेकिन उनकी पहल बहुधा तात्कालिक अवधि में राहत आधारित होती है। परिणामतः इससे न तो लोगों की समस्याओं का दीर्घकालिक समाधान मिल पा रहा है और न ही इस तरह की पहल लोगों के अनुकूलन तंत्र और क्षमता पर कोई सकारात्मक प्रभाव डाल पा रही है।

सदियों से, स्थानीय लोगों ने बाढ़ से निपटने हेतु अपने तरीकों एवं माध्यमों को विकसित किया है। ये उपाय और तकनीक स्थान विशेष के अनुसार होते हैं, इनको किसी बाहरी मदद की आवश्यकता नहीं होती, इनमें वैज्ञानिकता स्वाभाविक होती है। इन तरीकों और माध्यमों ने इस क्षेत्र के लोगों की जीवनशैली को संवारा है और उनकी अनुकूलन क्षमता को सवंर्धित किया है। आज बाढ़, जल–जमाव और जलवायु परिवर्तन की समस्याओं से निपटने हेतु समुदाय की ऐसी अनुकूलन क्षमताएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

स्थानीय अनूकूलन रणनीतियों का दस्तावेजीकरण

यहां बहुत सी ऐसी गतिविधियां हैं, जिन्हें स्थानीय समुदायों ने विकसित अथवा आत्मसात् किया है। कुछ सन्दर्भ संस्थाओं द्वारा विकसित तकनीक और गतिविधियों का परीक्षण किया गया, उनकी परख की गयी और तब जाकर स्थानीय प्रासंगिकता एवं उपयुक्तता के आधार पर उनको अपनाया गया है। बाढ़ स्थितियों से निपटने हेतु स्थानीय समुदायों द्वारा समयान्तर में कई दूसरी गतिविधियां और तकनीक विकसित की गयीं। स्वयंसेवी संस्था गोरखपुर एन्वायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप ने पूर्वांचल की 20 सहयोगी संस्थाओं के साथ मिलकर इस क्षेत्र में स्थानीय लोगों द्वारा ऐसी ही लम्बे समय से विकसित, परखी एवं व्यवहृत की जा रही 100 गतिविधियों को दस्तावेजित किया है।

सभी गतिविधियां एक साथ लाने से यह तथ्य प्रदर्शित होता है कि लोगों द्वारा कृषिगत एवं अकृषिगत दोनों प्रकार की गतिविधियां अपनाई जा रही हैं, जो कि बाढ़ पूर्व, बाढ़ के दौरान एवं बाढ़ के बाद जैसे वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। बड़ी संख्या में बहुत सी ऐसी गतिविधियां हैं, जो समुदाय को बाढ़ के आने से पहले ही उपज लेने में मदद कर रही हैं। सामान्यतः यह समुचित प्रजातियों और अगेती व कम अवधि फसल अपनाने से व्यवस्थित होता है। दूसरा तरीका आपदाओं के लिए पूर्व तैयारी का है। इसके अन्तर्गत अनाज एवं चारा बैंक स्थापित कर बाढ़ के दौरान खाद्य एवं चारे की उपलब्धता सुनिश्चित करना तथा बाढ़ के प्रभाव को कम करने हेतु जल निकासी नालियों की सामूहिक रूप से साफ–सफाई आदि शामिल हैं। बाढ़ के बाद, लोगों को सामान्य जीवन में वापस आने के लिए लचीलापन होना आवश्यक है। सामान्य रूप से यह फसलों के सही प्रकार चुनने और बाढ़ के दौरान होने वाले नुकसान की भरपाई करने के लिए कम अवधि वाली फसलों की उपज लेने से किया जा सकता है।

इस लेख में दो ऐसी घटनाओं को उल्लिखित किया गया है, जहां समुदाय ने आपदा पूर्व तैयारियों को एक गतिविधि के तौर पर लिया और बाढ़ से होने वाले नुकसान को कम करने में सफलता पाई–

गतिविधि 1 : जल निकास सुधार

थारू जन जाति बहुल तीन गांवों बरतिया, विशुनपुर एवं फकीरपुर को मिलाकर अम्बा पंचायत है। ये गांव तीन तरफ से जंगलों से घिरे हैं और इनके उत्तर में गेरूवा नदी है।

जिला बहराईच के विकास खण्ड मिहिनपुरवा में अवस्थित अम्बा पंचायत में उरई नाला मुख्यतः पहाड़ियों से आने वाले वर्षा जल का स्रोत है, जो खेती के लिए अमृततुल्य काम करता है, लेकिन मानसून आने के साथ ही यह नाला बाढ़ग्रस्त हो जाता है और कई तरह से तबाही का कारण बनता है। पूरे क्षेत्र में जल–जमाव हो जाता है और फसलें नष्ट हो जाती हैं। रख–रखाव के अभाव में, आस–पास के क्षेत्रों से मिट्टी बहकर नाले में जमा होती है और जल बहाव को बाधित कर देती है, जिससे यदि थोड़ा सा भी पानी अधिक हो जाये तो चारों तरफ फैल जाता है। यही कारण है कि यह क्षेत्र प्रत्येक वर्ष बाढ़ की विभीषिका को झेलता है और इस पूरे भू–भाग का एक तिहाई हिस्सा प्रभावित होता है। खरीफ ऋतु में धान और मक्का तो पूरी तरह नष्ट हो जाती है, जबकि खेतों का पानी देर से निकलने के कारण रबी फसल (गेंहूं, मटर, खेसारी, मसूर तीसी आदि) की बुवाई भी बुरी तरह से प्रभावित होती है।

इस समस्या से निपटने के लिए, भारतीय मानव समाज कल्याण सेवा संस्थान, बहराईच ने लोगों को संगठित कर, उनके साथ लगातार बैठकें आयोजित कीं और समस्या के समाधान के लिए स्थानीय नेतृत्व को विकसित किया। संस्थान द्वारा लोगों को अपेक्षित सूचनाएं एवं सम्पर्क उपलब्ध कराये गये और कार्य की रणनीति तैयार करने हेतु गांव स्तर पर एक दबाव समूह गठित किया गया।

परिणामस्वरूप, अब प्रत्येक वर्ष मई माह में बरतिया से 50, विशुनपुर से 150 और फकीरपुर से 95 किसान सामूहिक रूप से मिलकर अपने क्षेत्र में नाले की सफाई करते हैं। इस सफाई से नाले का पानी बिना किसी नुकसान के आसानी से मुख्य नदी में चला जाता है और खरीफ फसल को कोई नुकसान नहीं पहुंचता। इसके अतिरिक्त जून व जुलाई में यह नाला सिंचाई के मुख्य साधन के तौर पर प्रयुक्त होता है। पहले लोग अपने श्रम का योगदान देते थे। लेकिन पिछले पाँच वर्षों से यह नियम बदल गया है और लोगों ने मिलकर यह तय किया है कि यदि कोई अपने श्रम का योगदान नहीं करता है तो वह उसके बदले श्रम मूल्य रू0 60.00 का योगदान करेगा। बैठक में लोगों ने यह भी तय किया है कि इस तरह से एकत्र पैसे से नाले की

फोटो : जी0ई0ए0जी0

बांध पर चारा संग्रह

सफाई एवं छोटी–मोटी कमियों को दूर किया जायेगा। दूसरी तरफ, यदि यह पैसा बच जाता है, तो यह समुदाय की बेहतरी के लिए खर्च किया जायेगा। इस प्रत्यक्ष लाभ के अतिरिक्त अप्रत्यक्ष लाभ के तौर पर इस तरह के सामूहिक कार्यों से लोगों के बीच सद्भावना, एकता और आत्म–निर्भरता को भी बढ़ावा मिलता है।

गतिविधि 2 : वातानुकूलन के लिए गहरी जुताई

रोहिन और बसमनिया नदी के बीच अवस्थित गांव रघुनाथपुर बाढ़ एवं सूखा दोनों से प्रभावित होता है। नदियों के उफनाने से खेतों में बालू एवं गाद जमा हो जाती है, जिससे खेती नहीं हो पाती है। यह तो नहीं कहा जा सकता है कि जल–जमाव की बढ़ती अवधि एवं खेतों में घटती नमी ही अगली फसल की बुवाई में देरी के लिए एकमात्र कारण है, परन्तु यह अवश्य है कि इससे बीजों के अंकुरण पर अत्यधिक विपरीत प्रभाव पड़ता है। समय बीतने के साथ धीरे–धीरे इस स्थिति ने भूमि की उर्वरा शक्ति, रबी फसल की खेती और लोगों की आजीविका को गंभीरता से प्रभावित किया है। नदी के किनारे बसे 30–35 किसान परिवार गंभीर अभावों से गुजरने और खेती से विमुख होने को मजबूर हैं। नतीजतन वे अपने खेतों को परती छोड़ देते हैं और उन पर ऊँची–ऊँची घासें एवं अन्य अवांछित पौधों का जमाव हो जाता है।

बाढ़ प्रवण क्षेत्रों में खेतों की गहरी जुताई भूमि एवं जल प्रबन्धन की एक उपयुक्त पद्धति के तौर पर सामने आयी है। इसके द्वारा बाढ़ के साथ आई पोषणयुक्त गाद खेतों में रह जाती है और मृदा की नमी बरकरार रहती है। जुताई से घासों और पौधों द्वारा मिट्टी से ली गयी उर्वरता एवं रंध्रमयता मिट्टी को वापस मिल जाती है। बाढ़ के बाद, गहरी जुताई मिट्टी को पलट कर ऊपर कर देती है और खेतों की नमी को कम कर देती है, जिससे अगली फसल की बुवाई समय से हो सके। हालांकि, रेत से पटे खेतों की जुताई करना आसान नहीं होता है। रघुनाथपुर गांव के मात्र डेढ़ एकड़ भूमि की स्वामित्व वाले श्री मोहित पुत्र श्री प्रभु लगातार आर्थिक कठिनाईयों से जूझते रहते थे। वर्ष 2000 में ''विकल्प'' के सम्पर्क में आने पर, खरीफ फसल की बुवाई से पहले उन्होंने मई और जून के बीच अपने खेत में तीन बार गहरी जुताई की। उन्होंने पहले देशी हल से दो बार 9 सेमी0 की गहरी जुताई की और खेतों को सूखने के लिए छोड़ दिया। पुनः जून–जुलाई में इन्होंने खेत की एक बार और जुताई करने के बाद धान की बुवाई की। यह बहुत कठिन परिश्रम था, लेकिन मोहित डटे रहे और दोहरी जुताई कर निराई में लगने वाले श्रम और पैसे को बचा लिया।

इस प्रक्रिया को अपनाकर मोहित 50 डिसमिल भूमि पर 5 कुन्तल धान की उपज प्राप्त करने में सक्षम हुए, जिसका वर्तमान बाजार मूल्य रू0 2500.00 है। सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि मोहित अपने 6 सदस्यीय परिवार के लिए तीन माह की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में सक्षम हुए हैं। मोहित कहते हैं कि हालांकि बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में गहरी जुताई करना आसान नहीं है, फिर भी वह संतुष्ट हैं। वे दृढ़ता से विश्वास व्यक्त करते हैं कि यदि यह श्रमसाध्य प्रक्रिया निरन्तर अपनाई जाये तो प्रत्येक वर्ष सामान्य से डेढ़ से दोगुना अधिक तक उत्पादन प्राप्त होगा।

■

संदर्भ

यह अनुकूलन गतिविधियाँ गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप द्वारा संकलित मूल दस्तावेज **''बाढ़ स्थितियों से निपटने की सामुदायिक गतिविधियाँ''** नामक पुस्तक से ली गई हैं। मूलतः हिन्दी में संकलित इस दस्तावेज में 100 गतिविधियों को समाहित किया गया है, जिसमें से 43 गतिविधियों का अंग्रेजी रूपान्तरण भी इसी नाम से उपलब्ध है। उपरोक्त पुस्तकें गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप से प्राप्त की जा सकती हैं।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप,
224 पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड, पोस्ट बाक्स # 60, गोरखपुर

Managing water for sustainable farming
LEISA INDIA, Vol. 12, No.3, Pg. # 19-21 ,September 2010

उत्पादकता के ओएसेस
लघु जल संभरण विकास की एक कहानी

ह्रास हो रहे पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ाने एवं ग्रामीण जनों के लिए आजीविका के विविध अवसरों के निर्माण तथा स्थाई पारिस्थितिकी निर्माण हेतु लघु स्तर पर जल संभरण को विकसित करना एक व्यवहारिक रास्ता है। असीमा ट्रस्ट ने इसे महाराष्ट्र के आदिवासी गांवों में एक छोटे से क्षेत्र 14 एकड़ में कर दिखाया है।

फोटो : लेखक

कण्टूर खाईयों में संग्रहित पानी

के० राघवेन्द्र राव

मानसून एक बार फिर से आ रहा है और समाचार पत्रों में आ रही खबरों से हम सभी परिचित हैं। देश के कुछ हिस्सों में भारी बारिश और बाढ़ की खबर है, तो अन्य हिस्सों में सामान्य से कम वर्षा के चलते स्थिति सामान्य होने की सूचनाएं हैं और यह भी अनुमान है कि कम उत्पादकता, फसल हानि व खेती का संकट उत्पन्न होगा। इसके लिए हमेशा राज्य का मामला समझकर चुप नहीं रहा जा सकता। यदि एक बार वर्षा जल संचित कर यह सुनिश्चित कर सके कि पानी मिट्टी की तहों में पहुंच जाये और भूजल पूर्नप्रवाहित हो, तो स्थितियों में सुधार की बेहतर संभावना हो सकती है। महाराष्ट्र में असीमा ट्रस्ट ने अपने अनुभवों से इसका प्रदर्शन कर दिखाया है।

एक विकासात्मक संगठन असीमा एजुकेशनल ट्रस्ट वंचित समूहों के बच्चों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए महाराष्ट्र जनपद के कुछ हिस्सों में काम कर रही है। आदिवासी समुदायों के बच्चों तक पहुंचने के इरादे के साथ इसने नासिक जिले के छह आदिवासी बस्तियों से घिरे आंवलखेड़ गांव में एक प्राइमरी स्कूल स्थापित किया। 14 एकड़ के इस स्कूल परिसर में आस–पास के समुदायों की पेयजल की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक खुले कुंए का निर्माण किया गया। भले ही इस क्षेत्र की 3000–3500 मिमी0 वार्षिक औसत वर्षा है, तथापि, समुदायों कों गर्मियों के दिनों में पेयजल का घोर संकट झेलना पड़ता है। इसलिए यहां यह आवश्यक था कि कुंए हर समय पानी से भरे रहें। इस गतिविधि का लक्ष्य भरपूर मात्रा में वर्षा जल को संरक्षित करने का था ताकि पीने के साथ–साथ सिंचाई के लिए भी पानी की उपलब्धता स्थाई रूप से हो। जल संरक्षण के प्रदर्शन का प्रयास इस उम्मीद के साथ किया गया था कि ग्रामीण स्वयं अपनी भूमि पर इस गतिविधि को अपनाने के लिए उत्साहित हों।

वर्ष 2008 की गर्मियों में काम शुरू किया गया। सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण कर एक व्यापक वर्षा जल संरक्षण की योजना तैयार की गयी। पूरे क्षेत्र में चारों तरफ घूमकर ऐसे उपयुक्त स्थान का निर्णय किया गया, जहां वर्षा जल को संरक्षित कर रोका जा सके। असमतल स्थलाकृति और खड़ी पहाड़ियों को देखते हुए कण्टूर लाइनें चिन्हित की गयीं और उनके साथ खाइयां खोदी गयीं। मेड़बन्दी का काम घाटी की चोटी से शुरू किया गया। यह निश्चित था कि वर्षा जल इसमें गिरेगा और रूकेगा भी। इसके साथ ही पानी यदि तेजी के साथ गिरेगा तो मिट्टी का कटाव नहीं होगा। रूके हुए पानी को धीरे–धीरे नीचे जाने तथा इसे मिट्टी में समाहित होने का अवसर प्रदान करने के लिए पहाड़ियों के बीच घाटियों में चेकडैम की एक श्रृंखला तैयार की गयी।

खाइयों, बांधों और छोटे गली प्लगों सहित मिट्टी और नमी संरक्षण के सभी बुनियादी उपायों को वर्ष 2008 के मानसून से पूर्व पूरा कर लिया गया। कार्य के कुछ हिस्सों को आस–पास के गांव वालों के सहयोग से पूरा कराया गया। गर्मी के महीनों में इस काम को किये जाने का दूसरा लाभ यह हुआ कि गांव के लोगों को स्थानीय स्तर पर रोजगार की उपलब्धता हो गयी और उनका पलायन नहीं हुआ। क्योंकि इस क्षेत्र में वर्षा आधारित खेती होने के कारण गर्मियों में खेतों में काम नहीं रहता था।

अब इस तकनीक को धीरे–धीरे बढ़ावा मिल रहा है और मिट्टी व नमी संरक्षण हेतु मुख्य कार्य बांध स्थिरीकरण का स्थान वनस्पति स्थिरीकरण ने ले लिया है अर्थात् नाइट्रोजन स्थिरीकरण प्रजातियों के साथ छोटे पैमाने पर वृक्षारोपण भी किया जा रहा है।

फसल उत्पादन अभी भी प्रारम्भ नहीं हुआ है क्योंकि असीमा ट्रस्ट स्कूल भवन का निर्माण पूरा करवाने और आदिवासी बच्चों के लिए अस्थाई ढांचे में कक्षाएं चलाने में व्यस्त है। एक बार स्कूल भवन पूरा हो जाने के बाद एक गृहवाटिका तैयार करने पर कार्य प्रारम्भ किया जायेगा। अभी भी लगभग 3000 वर्ग मीटर का क्षेत्र चिन्हित किया जा चुका है, जहां पर अनाज (मोटे अनाज), दालें (चना, उर्द, मसूर) उगाया जा सकेगा।

उभरते सकारात्मक परिणाम

मिट्टी व नमी संरक्षण कार्य के प्रभाव अभी से दिखने आरम्भ हो गये हैं। हम खाईयों में एकत्र पानी को देख सकते हैं। यदि ये खाईयां न होती तो पानी बह जाता और बेकार हो जाता। इसी प्रकार, गली प्लगों में इकट्ठा पानी को भी देख सकते हैं कि एक छोटा, कम लागत का ढांचा अच्छे ढंग से व्यवस्थित है, जहां बारिश के पानी को एकत्र कर सकते हैं, जो कि बेकार बह जाता था, इसके अलावा बहुमूल्य संसाधन बारिश के पानी को एकत्र कर मृदा की ऊपरी उर्वर परत को सुरक्षित रख सकते हैं, जो बहते पानी के साथ बह जाती। यह कार्य इस सोच के साथ किया गया कि पानी चले, न कि तेजी से

बहे। खाइयों में एकत्र पानी भूमिगत शुद्धिकरण को प्रोत्साहित करती है और भूमिगत जल स्तर के पुनर्भरण को बढ़ावा देती है। उप सतही मृदा में अधिक नमी बिना किसी पूरक सिंचाई की आवश्यकता के वनस्पतियों के बेहतर विकास को बढ़ावा भी देगें।

बड़े चेकडैम में पानी संग्रह की क्षमता भी अधिक है। कुंए के अन्दर देखकर यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि भूगर्भ जल धाराएं पुनः प्रवाहित होने लगीं हैं। बारिश बन्द होने के लम्बे समय के बाद भी कुंए में अच्छी तरह से पानी आने लगा है। इससे कुंए में हर समय पानी भरा रहता है। जामुन, आम, अमरूद, सीताफल आदि फलदार वृक्ष जो पहले से भी लगाये जाते रहे हैं, उनका भी मामूली पैमाने पर पौधरोपण प्रारम्भ कर दिया गया है। इस तरह के प्रयास को बड़े स्तर पर करने की आवश्यकता है और यह सब स्कूल भवन निर्माण का कार्य पूरा होने के बाद ही होगा। ठीक इसी प्रकार, ऐसे बहु उपयोगी एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण वाले पौधों को लगाया जायेगा, जो एक तरफ तो पारिस्थितिकी का संतुलन बनाये रखने में मददगार साबित होगें, दूसरी तरफ उनसे चारा, खाद (नाइट्रोजन स्थिरीकरण / पत्तियों के गिरने से हरी खाद), जलौनी लकड़ी, इमारती लकड़ी एवं फाइबर भी उपलब्ध होगा। पारिस्थितिकी तंत्र विकास के तौर पर यहां पर पक्षियों, सरीसृप, कीड़े आदि विकसित होगें, जो जैव विविधता को बढ़ायेंगें और पारिस्थितिकी तंत्र के अनुकूलन व स्थाईत्व को बढ़ायेंगे। ये सभी गतिविधियां दो वर्ष से भी कम समय में पूरी होगीं। पारिस्थितिकी तंत्र विकसित होने के साथ और अधिक जटिल होगा, जिससे अनाज, जानवरों के लिए चारा आदि उगाने की विविधता बढ़ेगी और यह पक्षियों, सरीसृप, कीड़ों आदि के लिए आश्रय स्थल के रूप में तैयार होगा।

यदि जल संभरण प्रबन्धन के निम्न पहलुओं पर ध्यान दिया जाये तो बारिश के पानी को आसानी से संरक्षित किया जा सकता है –

अ) कृषिगत गतिविधियां

- ढलान के आर–पार तक जुताई करें, जिससे बारिश के पानी को मिट्टी के अन्दर रिसाव होने में मदद मिले।
- विविध प्रकार की फसलें लगायें, जिससे खेतों में कई सतह होगी परिणामस्वरूप बारिश का पानी सीधे जमीन पर नहीं आयेगा और पृथ्वी को होने वाले नुकसान में कमी आयेगी।
- मिट्टी को ढंक कर मल्चिंग कर वाष्पोत्सर्जन की सुरक्षा करें।
- मृदा उर्वरता को सुदृढ़ बनाने के लिए जैविक गतिविधियां जैसे – कम्पोस्टिंग आदि करें।
- कृषि–पारिस्थितिकी क्षेत्र के अनुसार फसलों का चयन कर उन्हें उगायें।
- कृषिगत पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा के लिए ऐसे बहुउपयोगी वृक्षों का पौध रोपण करें, जिससे हवाओं के दबाव को रोका जा सके, नाइट्रोजन स्थिरीकरण हो, जलावनी लकड़ी की उपलब्धता के साथ पक्षियों और सरीसृपों के लिए आश्रय स्थल तथा इमारती लकड़ी भी प्राप्त हो।

ब) बांध बनाना

- बारिश के पानी को रोकने तथा मृदा के ऊपरी सतह के संरक्षण के लिए खाईयों एवं बाधों का निर्माण करना।
- पानी के तेज बहाव को रोकने के लिए कण्टूर का निर्माण एवं मेड़बन्दी करना।

स) चेकडैम

- घाटी के सिरे से उचित जगह पर चेकडैम बनाना सुनिश्चित किया जाये ताकि पानी का बहाव मन्द गति से हो और पहाड़ी की तरफ से पानी तेजी से न आये।
- प्रत्येक चेकडैम के ऊपरी सिरे पर मिट्टी को जकड़ने वाली वनस्पतियों जैसे बांस और इसी तरह की अन्य घासें लगायी जायें, जिससे पानी के बहाव पर दबाव बना रहे और नये बनाये गये चेकडैम को नुकसान न पहुंचे।

फोटो : लेखक

कण्टूर लाइनों के साथ खाईयों की खुदाई

भविष्य के लिए उम्मीद

ह्रास हो रही पारिस्थितिकी को सुदृढ़ बनाने, ग्रामीणों के लिए विविध आजीविका अवसरों के निर्माण और जल, मृदा एवं जैव विविधता पर आधारित स्थाई पारिस्थितिकी के लिए लघु जल संभरण एक व्यवहारिक माध्यम है। भारत सरकार द्वारा जारी दिशा–निर्देशों के अनुसार न्यूनतम 500 हेक्टेयर परिक्षेत्र में बनाया गया जल संभरण ही प्रभावी होगा, परन्तु इस प्रदर्शन ने इस भ्रम को तोड़ा है। ऐसे में, स्थानीय समुदाय की सहभागिता के साथ पूर्ण किये गये इस पहल से आस–पास के गांवों के लोग उत्साहित होकर अपनी जमीन पर इस तरह की गतिविधियों को अपनाने के लिए तैयार होगें। इसी प्रकार के कार्य हमारे देश के सबसे खराब भूमि पर किये जा सकते हैं। हरीतिमा, खाद्य एवं जल सुरक्षित भारत के मिशन के लिए इस एक छोटे से प्रयास के साथ हम अनुत्पादक जमीन को उत्पादकता के ओएसेस में परिवर्तित कर सकते हैं।

■

ईमेल : raghu_oasisfarm@hotmail.com

Managing water for sustainable farming
LEISA INDIA, Vol. 12, No.3, Pg. # 6-7 ,September 2010

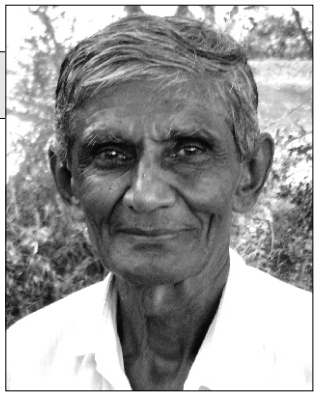

जीवाश्म/ ह्यूमस : मृदा जल संरक्षण की कुंजी

एल० नारायण रेड्डी

किसी भी जीव–जन्तु को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए आवश्यक मूलभूत तत्वों में हवा के बाद पानी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कृषि में पानी फसल उत्पादन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दिन–प्रतिदिन, पानी की समस्या बढ़ती जा रही है और बहुत से कारणों की वजह से खेती के लिए भी उपलब्ध पानी की गुणवत्ता अच्छी नहीं रह गयी है। पानी में सोडियम लवण की मात्रा अधिक होने से यह खारा भी हो रहा है। अतः यह बहुत महत्वपूर्ण है कि फसल उत्पादन में प्रयुक्त पानी बहुत प्रभावी हो, साथ ही खेती करने में प्रयुक्त पानी की प्रत्येक बूंद से अधिक अन्न भी प्राप्त हो सके।

पिछले दो दशकों के दौरान प्रत्येक वर्ष में भूमिगत जलस्तर 3–6 मीटर तक घटा है। पानी के इस तीव्र संकट का मुख्य कारण मृदा में समुचित जीवाश्म का अंश न होने की वजह से मृदा नमी संरक्षण में अक्षम हो रही है। वर्ष 1960 में जहां मृदा में सूक्ष्म जीवाणुओं की मात्रा 3 प्रतिशत थी, वहीं निरन्तर रासायनिक खादों के प्रयोग से घटकर 0.3 प्रतिशत रह गयी है। मृदा में सूक्ष्म जीवाणुओं के ह्रास का दूसरा कारण मृदा संरक्षण की उपेक्षा करना भी है। अतः आज मिट्टी को सीधे सूर्य के प्रकाश से बचाने के लिए हरा या सूखा मल्च उपलब्ध कराना अति आवश्यक है। इसके लिए जरूरी है कि जमीन के चारों तरफ पेड़ व झाड़ियां उगायें और यदि जमीन 60 मीटर से अधिक लम्बी या चौड़ी है, तो तेज हवा से बचाव के लिए खेत के चारों तरफ वानस्पतिक चहारदीवारी भी लगा सकते हैं। प्रत्येक 10 मीटर पर लगाया गया पेड़ या झाड़ियां 100 मीटर भूमि को तेजी से आने वाली हवा के प्रभाव से सुरक्षित कर सकती हैं, जिससे मृदा हमेशा नम बनी रहती है। मृदा के कण आपस में एक –दूसरे से तभी बंधे रह सकते हैं, जब उसमें किसी भी प्रकार के रसायनों का प्रयोग कतई न किया जाये। मात्र इसी एक कार्य से मृदा जीवाश्मों की संख्या में बढ़ोत्तरी होगी, जिससे वे पौधों के अंकुरण, वृद्धि के लिए काम कर सकेगें और इससे मृदा की पुर्नउर्वरता भी बढ़ेगी एवं मृदा के आपस में संपुष्ट होने से हवा व पानी से होने वाला कटाव भी कम होगा।

यह समझना भी बहुत महत्वपूर्ण है कि गर्म सूरज की अपेक्षा तेज हवाओं से मृदा का क्षरण अधिक होता है। पेड़–पौधे भी अपनी जड़ों द्वारा मिट्टी में बनाये गये असंख्य छोटे–छोटे छिद्रों के माध्यम से पानी को अन्दर पहुंचाते रहते हैं। एक बड़े पेड़ के जड़ की लम्बाई को इस उदाहरण के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है कि एक घास जैसे पौधे की जड़ों को यदि एक में मिला लिया जाये तो वह 6600 मील अर्थात् 10250 किमी0 लम्बी जड़ बन जाती है। मिट्टी के अन्दर मौजूद सूक्ष्म जीवाश्म तत्वों के कारण ही मृदा अपने से 10 गुना वजनी पानी को अपने अन्दर समाहित कर लेती है तथा उसे अन्तः रिसाव या वाष्पीकरण के माध्यम से संरक्षित करती रहती है और जड़ों के चारों तरफ फैलकर उसे सिंचित भी करती है। मृदा जीवाश्म के द्वारा संरक्षित यह पानी मिट्टी की विभिन्न सतहों पर मृदा जैव के लिए सतत उपलब्ध रहता है। मिट्टी में कार्बन अथवा जीवाश्म तत्वों की मात्रा बढ़ाये बिना फसलों का उत्पादन बढ़ाना बहुत ही कठिन है। बड़े–बड़े बांधों के निर्माण और गंगा–कावेरी को जोड़ने की योजना भी बहुत कारगर नहीं हो सकती, वरन् इससे और बहुत सी समस्याएं उत्पन्न हो जायेंगीं। जैसे –बांध क्षेत्र की अति उपजाऊ मिट्टी गहराई तक चली जायेगी और समादेश क्षेत्र की मिट्टी में लवणता की मात्रा बढ़ने के कारण वह क्षेत्र आर्द्र रेगिस्तान में बदल जायेगा। हमें यह समझना होगा कि अधिक पानी की अपेक्षा कम पानी से फसलों का उत्पादन अधिक होता है। पानी घुलनशील विभिन्न प्रकार के खनिज तत्वों को पौधों के अन्दर तक पहुंचाने व पत्तियों के स्टोमेटा द्वारा वाष्पोत्सर्जन का एक माध्यम होता है। अतः बहुत आवश्यक होने पर ही उनकी सिंचाई करें अन्यथा सामान्य फसलों के लिए मिट्टी में पानी की अधिकता हो जायेगी। अतः यदि हमें फसल उत्पादकता बढ़ानी है, तो मृदा में जीवाश्म तत्वों की उपलब्धता कम से कम 2 प्रतिशत होनी आवश्यक होगी।

उन क्षेत्रों में जहां बोरवेल के माध्यम से सिंचाई होती है, वहां धान की खेती करना सबसे दुखद गतिविधि है। शोध प्रदर्शित करते हैं कि 1 किग्रा0 धान (न कि चावल) उगाने के लिए 5000 लीटर पानी का उपयोग होता है। ऐसे में अनुकूलन के लिए एस0आर0आई (श्री) अथवा मेडागास्कर पद्धति से खेती कर 50–60 प्रतिशत पानी के कम उपयोग से दुगुना उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। हम लोग अधिकांशतः वर्षा आधारित खेती ही करते हैं। अतः ऐसी स्थिति में हमें उच्च उत्पादन देने वाली प्रजाति की अपेक्षा सूखे व कीटाणुओं से सुरक्षित मोटे अनाजों तथा कन्दीय फसलों का उत्पादन करना चाहिए। अधिक उत्पादन देने वाली संकर प्रजाति व जी0 एम0 फसलें भारतीय कृषि उत्पादन व जीवित प्राणियों के लिए सबसे अधिक नुकसानदायक हैं। अतः इन्हें हतोत्साहित किया जाना चाहिए। यदि प्रस्तावित बीज विधेयक केन्द्रीय सरकार द्वारा संस्तुत कर दिया गया तो यह एक बड़ा खतरा उत्पन्न होगा क्योंकि अधिक जी0एम0 बीजों के व्यवसायिक उत्पादन को स्वीकृति मिल जाने से हमारी सम्पूर्ण कृषि बरबाद हो जायेगी।

■

श्री निवासपुरा, वाया मारेलानाहाली
हनाबे पोस्ट–561203, डोडाबल्लापुर तालुक,
कर्नाटक, भारत

Managing water for sustainable farming
LEISA INDIA, Vol. 12, No.3, Pg. # 31 ,September 2010

लघु, सीमान्त किसान स्वतंत्रता और विकल्प चाहते है न कि वित्तीय समावेश

छोटे किसानों को अपने परिवार की आजीविका सुदृढ़ करने हेतु विविध गतिविधियों के लिए कर्ज और अन्य सहायक सेवाओं की आवश्यकता होती है। स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह इस कार्य के लिए बहुत ही उपयुक्त संस्थान है, जो एक गरीब किसान परिवार को अपनी आजीविका रणनीति विकसित करने के लिए आवश्यक स्थान, संसाधन और क्षमता प्रदान करता है।

अलॉयसिस प्रकाश फर्नान्डीज

कर्नाटक राज्य के गडक जिले में वर्ष 1904 में पहली सहकारी समिति की स्थापना के समय से ही मुख्यतः सूखा क्षेत्र के सीमान्त व लघु किसान वित्तीय समावेशन नीति और गतिविधियों का लक्ष्य रहे हैं। तत्पश्चात् देश के वित्तीय क्षेत्र में लघु, सीमान्त किसानों को शामिल करने के क्रम में कुछ बड़े व ठोस कदम उठाये गये, जिनमें से वर्श 1969 में बैंकों का राष्ट्रीयकरण, वर्ष 1975 में कृषि और ग्राम्य विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक (नाबार्ड) की शुरूआत, वर्ष 1975–76 में ही क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शुरूआत और वर्ष 1992 में स्वयं सहायता समूह–बैंक जुड़ाव कार्यक्रम का परिचय कुछ मुख्य पहल रहे। लघु व सीमान्त किसानों को लक्षित करते हुए विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म वित्तीय योजनाएं इन संस्थानों की देख–रेख में चलाई गयीं। वर्ष 1960–67 में एकीकृत कृषि विकास कार्यक्रम से प्रारम्भ होकर वर्ष 2000 में स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण रोजगार योजना तक इस प्रकार की योजनाओं की एक लम्बी फेहरिस्त है। ये संस्थान, विशेषकर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और स्वयं सहायता समूह व अन्य विविध योजनाओं ने बिना किसी खाता और किसान क्रेडिट कार्ड आदि के छूट पर सूक्ष्म वित उपलब्ध कराया।

1999 के बाद गति पकड़ चुके इस कार्यक्रम में गैर बैकिंग वित्तीय संस्थाओं ने लाभ के लिए ''सूक्ष्म वित्त'' शब्द का प्रयोग नहीं किया था। उनका लक्ष्य गरीब था और देश के अन्दर कोई औपचारिक वित्तीय व्यवस्था नहीं थी, लेकिन पिछले कुछ महीनों में नव मुक्त वैश्विक वित्तीय क्षेत्र ने अधिकाधिक सफल और सारगर्भित बेहतर नतीजों के साथ अपना परचम लहरा दिया है। इस नव–मुक्त वैश्विक मॉडल की निजी और व्यापारिक पूंजीपतियों द्वारा निवेश, त्वरित वृद्धि, उच्च लाभ, उच्च लागत (ऊँची ब्याज दर एवं वेतन), आरम्भिक खुला प्रस्तावों और शीघ्र निकास जैसी कुछ विशिष्ट विशेषताएं हैं, जो इसे सफलीभूत कर रही हैं। धनराशि को प्रभावी ढंग से प्रयोग करने के लिए ग्राहकों को क्षमतावान बनाने और मूल्य अभिवृद्धि जैसे छोटे–छोटे सन्दर्भों से भी नव–मुक्त वैश्विक वित्तीय क्षेत्र जुड़ा है, इसलिए गरीबी के प्रभाव को कम करने में न्यून सफलता मिली है।

अध्ययन यह दर्शाते हैं कि देश के वित्तीय क्षेत्र के अन्दर सरकार की लघु सीमान्त किसानों को शामिल करती हुई इन कुछ पहलों के अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों में वित्तीय संस्थाओं द्वारा केवल खेती के गिरते स्तर को सुधारने के लिए छोटे–छोटे ऋण दिये गये हैं। ऋण–जमा सूचक यह दर्शाते हैं कि अधिकाधिक ऋण ग्रामीण क्षेत्रों को ही दिये गये हैं। ग्रामीण बचत का प्रतिशत शहरी क्षेत्र की अपेक्षा कम है और कृषिगत क्षेत्र को उपेक्षित कर सेवाओं एवं यांत्रिक क्षेत्रों में सकल वृद्धि की जा रही है। यद्यपि सरकार ग्रामीण क्षेत्र में ऋण बहाव बढ़ाने के लिए विभिन्न उपाय अपना रही है जो खेती करने, समझने के लिए है, फिर भी मांग बढ़ने की संभावना प्रतीत नहीं होती है।

स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह क्या है?

यहां पर कुछ विशेषताएं दी गयी है, जो एक स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह के निर्माण के लिए आवश्यक हैं –

- पी0आर0ए0तकनीक जैसे वेल्थ रैंकिग से प्रक्रिया आरम्भ की गयी ताकि गांव में गरीब परिवारों की पहचान की जा सके।
- चिन्हित गरीब परिवारों के साथ बैठक कर स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह के विषय में संक्षिप्त चर्चा की गयी और उनसे अनुरोध किया गया कि वे समूह गठन करें।
- सदस्यों ने जाति, धर्म और कार्य से परे आपसी विश्वास और सहयोग पर आधारित आपसी सम्बद्धता के आधार पर अपने आपको स्वयं चयनित किया।
- समूहों को कुल 12 प्रकार की संस्थागत क्षमता अभिवृद्धि कराई गयी।
- दूसरी तरफ सदस्यों ने अपनी नियमित बैठक और बचत आरम्भ कर दी।
- उन्होंने बैंक में खाता खोलकर उसमें अपनी बचत रखनी और बाद में बैंक से ऋण लेनी प्रारम्भ की।
- उन्होंने अपने सामान्य फण्ड से ऋण लेना प्रारम्भ कर दिया।
- छः माह बाद स्वयं सहायता समूहों का बैंक से जुड़ाव कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, जिसके तहत् पूरे समूह को एक ऋण देकर उनसे समूह में व्यक्तिगत ऋण का निर्धारण सुनिश्चित करने को कहा गया।

हो सकता है कि समय के साथ यह सुझाव आये कि खेती के लिए केन्द्रित ऋण को ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले परिवारों के लिए ऋण के रूप में परिवर्तित कर दिया जाये। इस परिवर्तन का मुख्य कारण कम होती जमीनें, खेती निवेश की बढ़ती लागत से बढ़ता जोखिम, घटती मृदा उर्वरता और बाजार भाव का तेजी से चढ़ना–उतरना है। परिणाम स्वरूप, सूखा क्षेत्रों के किसान परिवार विशेषकर लघु व सीमान्त किसान अपने आजीविका आधारित गतिविधियों में आयजनक गतिविधियों की संख्या बढ़ा रहे हैं। वे अब विभिन्न गतिविधियों को समावेशित करते हुए आजीविका रणनीति अपना रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि उन्हें खेती के अतिरिक्त आयजनक अन्य गतिविधियों के लिए भी ऋण की आवश्यकता पड़ रही है। इसके अलावा इस परिवर्तन के लिए मानकयुक्त ऋण पैकेज और सम्पत्ति इकाई जैसे 3–5 गायें, 20–21 भेड़ आदि भी उत्तरदायी हैं, जो व्यवहारिक रूप से विचारणीय हैं लेकिन ऐसी स्थिति में जबकि गांवों में आमदनी का कोई ठोस जरिया नहीं होता और उन्हें सभी प्रकार के ऋण लगभग एक ही ब्याज दर पर मिलते हैं तो मासिक अथवा साप्ताहिक तौर पर निश्चित राशि की वापसी समुदाय के लिए संभव नहीं हो सकती है।

''कृषि के लिए ऋण'' हेतु बनी सरकारी नीति का दायरा बहुत सीमित है। एन0एस0एस0ओ0 द्वारा किये गये सर्वे परिणाम 60–70 प्रतिशत जनसंख्या को किसान के रूप में दर्शाते हैं। इस सर्वे के माध्यम से एक प्रश्न पूछा गया है कि विगत वर्ष के दौरान क्या आपने 30 दिन के लिए खेती किया? यदि जबाव ''हाँ'' में है, तो उस व्यक्ति को ''किसान'' की सूची में डाल दिया गया है। यद्यपि वर्ष के शेष दिनों में वह अन्य गतिविधियों में संलग्न रहा है। इसके अतिरिक्त, परिवार के अन्य सदस्य भी उन गतिविधियों से जुड़े हुए हैं, जो खेती से सम्बन्धित नहीं हैं। अतः इसे बदलने की आवश्यकता है। ऋण की आवश्यकता ग्रामीण परिवार को है, न कि सिर्फ खेती के लिए।

स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह– एक बेहद उपयुक्त संस्थान

इस लेख में यह स्पष्ट प्रदर्शित हो रहा है कि एक गरीब परिवार को गरीबी से उबरने एवं आर्थिक सम्पन्नता हासिल करने के लिए आजीविका रणनीति विकसित करने हेतु सक्षम बनाने के लिए आवश्यक विस्तार, संसाधनों और क्षमता प्रदान करने के लिए स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह एक बेहद उपयुक्त संस्थान है। स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह विभिन्न प्रकार की आजीविका गतिविधियों में निवेश के लिए स्थान उपलब्ध कराती है, जो एक परिवार की आजीविका रणनीति में समाविष्ट हो सके, वे उन्हें यह भी सुविधा प्रदान करती है कि वे ऋण की राशि एवं ब्याज दर की सीमा तय कर सकें और परिवार की अनियमिति आमदनी के साथ अनुकूलन करते हुए वापसी की व्यवस्था भी सुनिश्चित कर सकें। जबकि बैंक और सूक्ष्म वित्तीय संस्थानों की निश्चित रूपरेखा होने के कारण ऋण वापसी में कठिनाई उठानी पड़ती है।

नीचे मायराडा में स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह के दो सदस्यों की आजीविका रणनीति एवं तत्सम्बन्धी लिये गये ऋण का ब्यौरा दिया गया है, जो आजीविका रणनीति निर्धारण में विविधता को प्रदर्शित करता है –

तालिका 1 : स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह चिक्काजाजुर, होलालकेरे तालुक, जिला चित्रदुर्ग, कर्नाटक के दो सदस्यों द्वारा लिये गये ऋण का विवरण

(1) कौसर बानू			(2) नागरथम्मा		
1996	1,000	खरीद–फरोख्त	1997	2,000	शिक्षा
1996	3,000	खरीद–फरोख्त	1997	500	शिक्षा
1997	5,000	खरीद–फरोख्त	1997	2,000	शिक्षा
1997	500	शिक्षा	1998	4,000	घरेलू उपयोग हेतु गैस
1997	5,000	दवा खर्च	1998	5,000	शिक्षा
1997	300	दवा खर्च	1998	5,000	वाहन ऋण
1998	4,000	खरीद–फरोख्त	1999	7,100	मकान मरम्मत
1998	5,000	खरीद–फरोख्त	1999	8,000	वाहन ऋण भुगतान
1998	5,000	खरीद–फरोख्त	2000	8,000	वाहन ऋण भुगतान
1999	5,000	खरीद–फरोख्त	2000	15,000	वाहन ऋण भुगतान
1999	12,000	खरीद–फरोख्त	2000	325	स्वयं सहायता समूह ड्रेस खरीदने हेतु
2000	25,000	गिरवी मकान छुड़ाने हेतु	2001	18,000	व्यापार
2000	325	स्वयं सहायता समूह ड्रेस खरीदने हेतु	2002	30,000	वाहन मरम्मत
2001	2,000	शिक्षा	2003	28,000	वाहन ऋण भुगतान
2002	40,000	मकान खरीदने हेतु	2003	8,325	सिलाई मशीन लेने हेतु
2003	325	घरेलू उपभोग	2004	2,300	घरेलू उपयोग हेतु गैस
2003	8,325	सिलाई मशीन लेने हेतु	2005	40,000	वाहन मरम्मत
2003	50,000	कृषि भूमि खरीदने हेतु	2005	1,000	जेवर ऋण
2004	2,300	घरेलू उपयोग हेतु गैस	2006	2,000	जेवर ऋण
2005	58,000	गिरवी खेती छुड़ाने हेतु	2007	62,000	टैम्पो और सोना खरीदने हेतु
2005	6,000	मकान मरम्मत	2008	22,820	टैम्पो मरम्मत और बीमा
2005	1,000	जेवर ऋण	2009	11,000	टैम्पो मरम्मत
2006	2,000	जेवर ऋण	2010	40,500	मकान मरम्मत और सोना खरीदने हेतु
2007	2,000	सोना खरीदने हेतु			
2008	53,820	साइकिल दुकान खोलने और सोना खरीदने हेतु			
2010	500	सोना खरीदने हेतु			
कुल	**4,59,390**		**कुल**	**3,22,870**	

उपरोक्त तालिका में कौसर बानू के केस में यह दिख रहा है कि इनके परिवार की आजीविका रणनीति मुख्य तौर पर प्रमुख परम्परागत गतिविधि खरीद–फरोख्त थी। स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह गठन से पूर्व इन्होंने खरीद–फरोख्त के लिए पूंजी हेतु अपनी जमीन गिरवी रखी थी, बाद में बहुत बार इन्होंने खरीद–फरोख्त के लिए स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह से ऋण लिया।

बढ़ती हुई खरीद–फरोख्त से हुई आमदनी से इनके परिवार ने अपनी गिरवी जमीन भी छुड़ा ली और एक कुंआ खोदने हेतु जमीन भी खरीद ली। कौसर बानू ने खरीद–फरोख्त की आयजनक गतिविधि में वृद्धि करने के साथ दो अन्य गतिविधियों को भी अपनाया – एक तो साइकिल की दुकान खोल ली और दूसरा खेती करने लगीं, जबकि शिक्षा में दीर्घकालिक निवेश किया। घरेलू उपयोग के लिए इन्होंने छोटी धनराशि का केवल एक ऋण लिया। अन्त में, सोना और जेवर के लिए ऋण लिया गया, जो यह प्रदर्शित करता है कि वे अब आत्मविश्वास से परिपूर्ण हैं। आजीविका रणनीति के तहत् कुल पूँजी निवेश रू0 4.5 लाख का था।

नागरथम्मा के केस में, परिवार के पास सूखा क्षेत्र में जमीन थी, परन्तु उसने खेती में निवेश न करने का निर्णय लिया। शुरूआत में उसने अपने टैम्पो में पैसा लगाना पसन्द किया। स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह ने उसके रख–रखाव हेतु पूँजी उपलब्ध कराया। दूसरी तरफ इन्होंने शिक्षा को भी प्राथमिकता दी। इन्होंने भी सोना खरीदा। परिवार की आजीविका रणनीति में कुल निवेश रू0 3.2 लाख का हुआ।

स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह जैसी गतिविधि परिवार को यह अवसर व स्वतन्त्रता प्रदान करती है कि वे खुद यह निर्णय करें कि किस गतिविधि में, कितना और कब निवेश करेंगीं।

यह भी आलोचना की जाती है कि स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह द्वारा केवल उपभोग के लिए ऋण दिया जाता है, जो कि गलत है। उपरोक्त तालिका में दिये गये आँकड़े यह बताते हैं कि औसत ऋण रू0 4000.00 का है, जो कौसर बानू ने अपनी आजीविका सुदृढ़ करने के लिये है। इससे स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह अपने सदस्यों को उनकी आवश्यकता के अनुसार बड़ी संख्या में विभिन्न धनराशि के ऋण उपलब्ध कराता है। इस पूरी प्रक्रिया में ध्यान देने योग्य यह होता है कि स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह सोच–विचार करने के बाद ही ऋण दें।

समन्वित ग्रामीण विकास योजना और स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण रोजगार योजना जैसी योजनाएं लगभग रू0 50,000.00 की एक या दो ऋण प्रदान करती हैं, जो कि अपर्याप्त है। इसके बाद भी उधार देने वाले संस्थान यह अनुमान लगाते हैं कि सम्पत्ति व्यवहारिक है जैसे– 3–5 गायें या फिर 20–21 भेड़ें किसान की सम्पत्ति हैं। इस संदर्भ में ये संस्थाएं यह भूल जाती है कि इसके साथ उन्हें अन्य सहायक सेवाएं जैसे पशु देखभाल, चारा, पानी आदि भी उपलब्ध करानी चाहिए क्योंकि प्रायः ये उधार लेने वाले लोग गरीब होते हैं और इन संसाधनों तक इनकी पहुंच नहीं होती है। दूसरी तरफ स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह इन बाधाओं को संगठित लॉबिंग के माध्यम से दूर करने में सहायता करते हैं।

आज ये स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह और उनके संघ इस कठोर सत्ता सम्बन्धों को बदलने में सक्षम हो चुके हैं। इनके साथ कोई भी अनुदान संलग्न नहीं है, लेकिन परिवार ऋण की उत्पादकता को बनाये रखने एवं आय अर्जन हेतु आवश्यक सभी सहायक सेवाएं सुनिश्चित करके ही ये संस्थान लोगों से ऋण लेते या देते हैं।

स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह की उपयुक्तता के पीछे दूसरा कारण यह भी है कि वे ऋण अथवा सम्पत्तियों से सम्बन्धित निश्चित अथवा मानक युक्त पैकेज या उत्पाद नहीं लेते हैं। दो परिवारों द्वारा विभिन्न कार्यों के लिए और विभिन्न आकार के ऋण इस बात को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं।

इस समूह की उपयुक्तता के पीछे तीसरा कारण यह है कि किसी सदस्य के सामने कोई अप्रत्याशित समस्या उत्पन्न हो जाने की स्थिति में एक स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह ऋण वापसी के दर को तद्नुसार समायोजित कर सकता है। इसके अलावा, स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह बैंक / सूक्ष्म वित्तीय संस्थानों के ऋण को समय से वापस करने में सक्षम है, क्योंकि – 1) दूसरे सदस्यों से नकद आता है और 2) समूह की सामूहिक निधि में बचत और ब्याज की धनराशि जमा होती है। हालांकि लोगों का मानना है कि इससे सामूहिक निधि खत्म हो जायेगी, परन्तु इस बात का कोई आधार नहीं है कि बैंक / सूक्ष्म वित्तीय संस्थानों के ऋण को समय से वापस करने से सामूहिक निधि खत्म होती है, वरन् सामूहिक निधि में वर्ष–दर–वर्ष बढ़ोत्तरी ही हो रही है।

वर्ष 1984–85 में जब पहली बार मायराडा की परियोजना के अर्न्तगत स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह का प्रादुर्भाव हुआ तो अन्तरीय ब्याज दर लागू करने की गतिविधियों के कारण बहुत सी सहकारी समितियां टूट गयीं। स्वास्थ्य और खाद्य के लिए लिये जाने वाले ऋण पर ब्याज दर बहुत ही कम (2–5 प्रतिशत सालाना) था, जबकि खरीद–फरोख्त के लिए लेने वाले ऋण पर ब्याज की दर बहुत अधिक (15–25 प्रतिशत सालाना) थी। यह शरिया या इस्लामिक बैंकिंग के एक प्रारूप से बहुत अधिक साम्य रखता था, जहाँ निवेशकर्ता की आमदनी लाभ में हिस्सा थी।

आज यह प्रारूप बदल चुका है, लोगों की धारणा बदल चुकी है और लोग स्वयं सहायता सम्बद्ध समूह एवं उनके संघों से जुड़ने को तत्पर हैं। यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है कि निश्चित तौर पर, इस अभ्यास को अपनाने से ''कृषि हेतु ऋण'' के बजाय ''किसान परिवार हेतु ऋण'' के लिए मानक लागू करने की माँग बदलेगी।

■

भूतपूर्व निदेशक
मायराडा
ईमेल : Fernandez@myrada.org

Finance for Farming
LEISA INDIA, Vol. 12, No.2, Pg. # 6-8, June 2010

Issues and Themes of LEISA India Published in English

V.1, No. 1, 1999 - Markets for LEISA and Organic products
V.1, No. 2, 1999 - Stakeholders in Research
V.1, No. 2, 1999 - Restoring biodiversity

V.2, No. 1, 2000 - Desertification
V.2, No. 2, 2000 - Farmer innovations
V.2, No. 3, 2000 - Farming in the forest
V.2, No. 4, 2000 - Monocultures towards sustainability

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.3, 2011 - Securing land rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the economy

वेबसाइट पर लीज़ा
www.leisaindia.org

लीज़ा गतिविधियों पर सीखने एवं अनुभव आदान– प्रदान हेतु एक वेबसाइट

मुख्य आकर्षण

- लीज़ा आधारित अनुभवों का बांटने की जगह
- किसानों द्वारा की जा रही लीज़ा गतिविधियों को जानने का एक स्रोत
- लीज़ा इण्डिया पत्रिकाओं का एक अभिलेख– अंग्रेजी व अन्य क्षेत्रीय अंक (तमिल, कन्नड़, हिन्दी, उड़िया और तेलगु)
- लीज़ा गतिविधियों से सम्बन्धित फोटो व वीडियो
- लोगों द्वारा अनुसरित लीज़ा गतिविधियों की सफल कहानियाँ

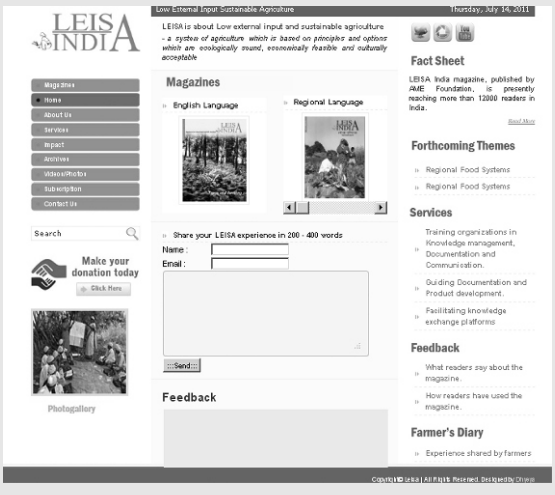

स्वयं सहायता समूहों और संघों का स्व नियमन/ शासन

स्वयं सहायता समूह और उनके संघ पूरे भारत में एक आन्दोलन के तौर पर जाने जा रहे हैं। इस आन्दोलन से होने वाले लाभों को स्थाई बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वे समग्र रूप से आत्मनिर्भर हों और उनके पास सम्पूर्ण स्वामित्व हो। इसका अर्थ यह है कि उत्प्रेरक संस्थाएं अपनी भूमिका को कम करते हुए धीरे-धीरे वहां से अपने-आपको वापस कर लें। स्वयं सहायता समूह और उनके संघ यह सुनिश्चित करेंगे कि उनके स्व नियमन, ढाँचागत रूपरेखा, क्रियान्वयन और व्यवस्थापन की सभी प्रक्रियाएं महिलाओं द्वारा

एस० रामा लक्ष्मी

उत्पादन सम्पत्तियों और साख की कमी का पूरा श्रेय भारत में ग्रामीण विकास की धीमी गति को जाता है। इस मुद्दे को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने व्यापक नीति निर्धारण किये जैसे वर्ष 1969 में निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण, क्षेत्रीय शाखा नेटवर्क का विस्तार, सेक्टर लेण्डिंग को प्राथमिकता और वर्ष 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रवेश। किसानों की बेहतरी के लिए बड़ी धनराशि का अनुदान देने वाले दाता संस्थाओं की संख्या में भारी वृद्धि हुई, इसके अलावा किसानों की बेहतरी के लिए दाता संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाली धनराशि में भी भारी वृद्धि हुई। फिर भी, भूमिहीनों, कृषिगत मजदूरों, निरक्षर महिलाओं और सूक्ष्म उद्यमियों की एक बड़ी संख्या तक पहुंचने में ये सभी नाकाम रहीं।

वर्ष 1980 में, नीति नियन्ताओं ने इसे संज्ञान में लेते हुए मुख्य तौर पर दो कार्य किये। एक तो स्वैच्छिक संगठनों के साथ काम करना प्रारम्भ किया और दूसरी ओर स्वयं सहायता समूहों की उन्नति की संभावनाओं पर बैंक के साथ चर्चा शुरू की। बैंक, जिसने यह मान लिया था कि लोगों को ऋण देकर उनसे वापस लेना बहुत मुश्किल कार्य है, उसने अचानक यह पाया कि स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से उन दायित्वों की वापसी का सुअवसर है और यह लाभप्रद भी है। एक मूल्यांकन के आधार पर वर्ष 1992 में नाबार्ड द्वारा 255 स्वयं सहायता समूहों का बैंक के साथ जुड़ाव के माध्यम से एक छोटी शुरूआत के तौर पर पाइलट परियोजना शुरू कर नाबार्ड ने स्वयं सहायता समूह बैंकिंग को मुख्य धारा में शामिल करने की पहल की। इस कार्यक्रम के माध्यम से जुड़े स्वयं सहायता समूहों की बचत रू. 69.5 लाख पहुंची और बैंक से जुड़ी हुई स्वयं सहायता समूहों को रू0 48.5 लाख का ऋण दिया गया और इसके माध्यम से 9.7 करोड़ घर आच्छादित हुए। वर्ष 1990 तक स्वयं सहायता समूह राज्य सरकारों की देख–रेख में थे और स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका वित्तीय मध्यस्थता से अधिक कुछ भी नहीं थी, लेकिन एक सामान्य रूचि वाले समूह के तौर पर ये दूसरे सन्दर्भों पर अच्छी तरह से कार्य कर रहे थे। स्वयं सहायता समूहों की कार्यसूची में सामाजिक, राजनीतिक और आजीविका आधारित मुद्दे भी शामिल थे।

सूक्ष्म पूंजी लगाने से सम्बन्धित क्षेत्रों में आजीविका की सहायता के लिए महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले। इसी समय आजीविका वित्त नाम से एक मंच तैयार किया गया और इसकी अगुवाई स्वैच्छिक संगठन ने की। स्वयं सहायता समूहों ने खेती की गतिविधियों में संलग्न रहने वाले अपने सदस्यों को अपने स्वयं के फण्ड से ऋण दिया। कुछ स्वयं सहायता समूहों ने अपनी रणनीति में बदलाव लाते हुए अपने सदस्यों की भूमि के उपचार व जल संरक्षण गतिविधि करने हेतु जल संरक्षण विकास संस्थाओं को अनुदान उपलब्ध कराया। भूमिहीन सदस्यों को संरक्षित भूमि (जैसे – बेकार पड़ी निजी भूमि, सार्वजनिक भूमि आदि) पर चारा उगाने के अधिकार देने के लिए स्वयं सहायता समूहों ने जल संरक्षण विकास संस्थाओं के साथ लॉबिंग की। इस रणनीति से ऊसर भूमि को उपजाऊ भूमि में बदलने में सहायता मिली, जिससे न केवल बायोमॉस बढ़ा और भूमि क्षरण को रोकने में महत्वपूर्ण मदद मिली, वरन् इससे उन भूमिहीन समूह सदस्यों की पहुंच चारे तक हुई, जिससे वे समूह से ऋण लेकर पशु खरीद सके और इस प्रकार उनके लिए आजीविका का स्रोत तैयार करने में भी मदद मिली। इस प्रकार की गतिविधियों से जमीन की गुणवत्ता उन्नत हुई व फसलों की विविधता में भी उल्लेखनीय बढ़त हुई।

स्वयं सहायता समूह संघ और आजीविका संवर्धन

अपनी पहुंच न होने के कारण मुद्दों पर कार्य कर पाने में अक्षम स्वयं सहायता समूहों से निकली आवश्यकताओं के द्वारा स्वयं सहायता समूहों का तंत्र उत्साहित था। छोटे स्वयं सहायता समूहों ने बैंक से प्राप्त अनुदान अथवा अपनी स्वयं की बचत से सदस्यों की वित्तीय आवश्यकता को पूरी करने हेतु आन्तरिक त्रण से एक छोटी आमदनी की अगुआई की। उच्चस्तरीय संगठनों के साथ बात–चीत एवं मोल–भाव की शक्ति इनके अन्दर सीमित मात्रा में थी। यह एक मात्र कारण था, जिसकी वजह से स्वयं सहायता समूहों का अनौपचारिक नेटवर्क अस्तित्व में आया। स्वयं सहायता समूह संघों को स्वैच्छिक संगठनों के द्वारा प्रोत्साहित किया गया एवं वर्ष 1990 के मध्य में उन्नत गुणवत्ता सुनिश्चित करने, न्यून लागत को प्रोत्साहन देने और स्थाई संगठनों को बनाने जैसे मुद्दों की तरफ सरकार का ध्यान गया। इन संघों ने विविध प्रकार की सेवाओं जैसे– सामाजिक, वित्तीय और आजीविका सम्बन्धी सेवाओं को प्रस्तुत किया। बहुत सी

घटनाओं में भारत में स्वयं सहायता समूह के संघों ने सेवाओं की बड़ी श्रृंखला प्रस्तुत की और बहु उपयोगी संघों के तौर पर प्रयोग किया जा सकता है।

आजीविका के लिए आवश्यक सहयोग करने हेतु स्वयं सहायता समूहों को आजीविका के तौर पर विकसित करना महत्वपूर्ण है। इसके लिए उन्हें कुछ वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए ताकि स्वयं सहायता समूहों से सदस्य ऋण प्राप्त कर सकें। स्वयं सहायता समूहों को बनाने और उनके संघों को अधिक स्थाई बनाने के लिए प्रोत्साहन देने वाली संस्थाएं क्षमता वर्धन में अधिक पूंजी लगाती हैं और उनको अपना व्यापार बढ़ाने के लिए संग्रह निधि बना रही हैं और बैंकों से ऋण उपलब्ध कराती हैं। साथ ही, इन गतिविधियों के लिए वार्षिक अनुदान भी उपलब्ध कराती हैं। राज्य सरकार के आजीविका गतिविधियों से सम्बन्धित बहुत से कार्यक्रम हैं, जिनके माध्यम से स्वयं सहायता समूह के सदस्य बिचौलियों को दरकिनार करते हुए अपने सामानों को खुद बाजार में बेचकर अपनी आमदनी को बढ़ा सकेगें। अनुभव यह बताते हैं कि ये सभी कार्य संघ के बिना संभव नहीं हैं।

स्वयं सहायता समूहों व संघों के प्रभाव

स्वयं सहायता समूहों और समूह–बैंक जुड़ाव कार्यक्रमों पर किये गये बहुत से अध्ययन सदस्यों की बचत की आदत, उनकी आमदनी, ऋण तक उनकी पहुंच और उनके परिवार की खाद्य, शिक्षा और स्वास्थ्य के स्तर पर उल्लेखनीय प्रभावों को प्रदर्शित करते हैं। मायराडा द्वारा बनाई गयी स्वयं सम्बद्ध समूहों का अगस्त, 2009 में ए0पी0एम0ए0एस0द्वारा किये गये मूल्यांकन से यह प्रदर्शित होता है कि हालांकि स्वयं सहायता समूहों से जुड़े सदस्य बहुत गरीब परिवारों से हैं और उन्होंने प्रति सप्ताह / प्रति माह छोटी धनराशि के साथ बचत प्रारम्भ की, लेकिन समय बीतने के साथ वे एक बड़ी धनराशि बचत कर पाये। समूह ने सदस्यों की बचत का प्रयोग समूह के लिए आय अर्जन हेतु और सदस्यों को समय से ऋण उपलब्ध कराने के लिए किया। साहूकारों पर उनकी निर्भरता भी घटी और साहूकारों की ऋण देने की पद्धतियों जैसे– घटी ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराने, ऋण वसूली की नरम प्रक्रिया आदि उल्लेखनीय बदलाव दर्ज किये गये। हालांकि अभी भी साहूकारों पर सदस्यों की कुछ निर्भरता है, पर उनमें निरन्तरता नहीं है।

आंध्र प्रदेश में स्वयं सहायता समूहों और बैंक के जुड़ाव पर ए0पी0एम0ए0एस0 द्वारा किये गये ताजा अध्ययन यह दर्शाते हैं कि स्वयं सहायता समूह का प्रत्येक तीसरा सदस्य रोजगार के अवसरों में वृद्धि कर रहा है। खाने पर बढ़ता खर्च और शिक्षा व स्वास्थ्य का उन्नत स्तर बढ़ी आमदनी का प्रतीक है। अधिकांश सदस्यों की ऋण ग्रस्तता घटी है।

स्व नियमन की आवश्यकता

संघों पर किये गये कुछ अध्ययन ये बताते हैं कि संघ आर्थिक विस्तार करते हैं, प्रोत्साहन और कार्य सम्पादन लागत घटाते हैं, मूल्य वृद्धि सेवाओं की व्यवस्था बनाने में सक्षम बनाते हैं और गरीबों की सशक्तता को बढ़ाते हैं। यद्यपि, आजीविका को प्रोत्साहन देने के लिए दीर्घकालिक सोच और निरन्तर क्षमता अभिवृद्धि अथवा दक्षता उन्नत करने की योजना होनी चाहिए। इस पृष्ठभूमि में, ए0पी0एम0ए0एस के अध्ययन (2007 में भारत में स्वयं सहायता समूह संघ) भी प्रदर्शित करते हैं कि प्रदाता संस्थाओं व औपचारिक वित्तीय संगठनों की मदद से स्थाई आजीविका पहल हेतु ऋण सेवाओं का विस्तार करने के लिए स्वयं सहायता संघ एक प्रतिरूप कड़ी के रूप में हो सकते हैं और इस उपयोग के लिए वे स्वयं के कोष का भी निर्माण कर सकते हैं। संघ आजीविका संवर्धन संस्थानों के साथ जुड़ाव को आवश्यक संतुष्टि के विचारणीय स्तर तक सरल बना सकते हैं अथवा नयी सहायक संस्थाओं को भी प्रोत्साहित कर सकते हैं।

आजीविका विस्तार के लिए उचित आन्तरिक तंत्र, मानक, नियंत्रण यंत्र रचना, व्यावसायिक गतिविधियों के वैधानिक अस्तित्व, आन्तरिक संचालन और पारदर्शिता के साथ संगठनात्मक प्रक्रिया को प्रोत्साहन देना चाहिए। इन अवयवों को प्रोत्साहन देने के लिए संघों को मजबूत स्व–नियमन और पर्यवेक्षण तंत्र की आवश्यकता होती है। स्वयं सहायता समूहों और समूह संघों के कामों के विषय में विश्वसनीय सूचना उपलब्ध कराकर उचित प्रबन्धन को फैसिलिटेट किया जा सकता है साथ ही स्व नियमन के माध्यम से जोखिम को कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य हितभागियों जैसे बैंक व अन्य वित्तीय संस्थानों के साथ विश्वास कायम करते हुए इन संघों की पहुंच अतिरिक्त अनुदान प्राप्त करने में बनाई जा सकती है।

वर्ष 2007 में ए0पी0एम0ए0एस0 ने जर्मनी की एक दाता संस्था, जो ग्रामीण गरीबी और वंचित समुदायों के लिए काम करती है, के साथ मिलकर आंध्र प्रदेश के निजामाबाद जिले के कामारेड्डी क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले 9 मण्डलों में एक पाइलट परियोजना का प्रारम्भ किया। यह परियोजना मुख्यतः क्षेत्रीय स्व नियंत्रण अथवा स्वयं नियंत्रण उद्यम को प्रोत्साहित करने के लिए थी। यद्यपि कि ए0पी0एम0ए0एस0 द्वारा की गयी यह गतिविधि स्व नियमन पर थी, और इसने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही फैसिलिटेटर और हितभागी महिला दोनों की ही विभिन्न सीख दिये।

स्व नियमन के मूल तत्व

स्वयं सहायता समूहों और समूह संघों के लिए स्व नियमन का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि स्वयं सहायता समूह सदस्य अपनी कार्यसूची स्वयं बना सकें तथा प्रक्रिया का प्रबन्ध एवं नियन्त्रण भी खुद ही सकें, जिससे कि स्वयं सहायता समूह तंत्र सफलतापूर्वक संचालित होते हुए अपने समूह के सदस्यों के लाभ के लिए स्थाई कार्य कर सके। स्व नियमन के विशिष्ट उद्देश्य हैं– सदस्यों का आर्थिक एवं सामाजिक विकास करना तथा स्थाई लोकतांत्रिक एवं वैधानिक संस्थान का निर्माण करना। स्व नियमन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित मूल पहलुओं पर स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों व उनके प्रतिनिधियों का विभिन्न स्तरों पर क्षमता निर्माण मुख्य केन्द्र बिन्दु होगा –

- बाहरी और आन्तरिक दोनों स्तरों पर यथेष्ट मानकों व नियमों का निर्माण
- अनुमोदित सामूहिक लेखा एवं आय–व्यय
- प्रबन्धन एवं जोखिमों का प्रभावी आन्तरिक नियंत्रण
- क्षेत्रवार विवरण, मानिटरिंग और मूल्य निर्धारण (क्षेत्रीय नियंत्रण से बाहर)
- अनिवार्य तौर पर सहकारी लेखा परीक्षा

- फालो–अप गतिविधियां
- संस्थागत सुरक्षा, सुनिश्चित जमा
- नियमित देखभाल और पर्यवेक्षण हेतु वित्तीय नियामकों से जुड़ाव

संगठन और प्रबन्धन

यह आवश्यक है कि स्वयं सहायता समूह सदस्यों और समूह संघों की सहमति स्व नियमन की आवश्यकता पर हो, वे स्वामित्व लेने के लिए अपनी इच्छा व्यक्त करें और स्व इच्छा से स्व नियमन को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करें। इसलिए प्रक्रिया को आरम्भ करने के लिए निम्नलिखित माध्यम हो सकते हैं– स्व नियमन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए संघ के पदाधिकारियों के साथ एक समन्वयन समिति गठित की जा सकती है।

समिति मुख्य तौर पर स्वयं नियमन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने एवं रणनीति विकसित करने का कार्य करेगी। समिति आन्तरिक निर्णय तंत्र को विकसित एवं स्थापित करने, मूल प्रदर्शन मानकों को अन्तिम स्वरूप प्रदान करने एवं गतिविधियों का नियोजन करने में कार्यकारी समिति का दिशा–निर्देश करेगी। समन्वयन समिति को सहयोग प्रदान करने के लिए, प्रोत्साहक एवं तकनीकी संस्थाओं के प्रतिनिधित्व के साथ एक सलाहकार समूह का भी गठन किया जा सकता है। सलाहकार समूह सामग्री / माडल विकसित करने, क्षमता व जानकारी निर्माण प्रशिक्षण आयोजन, भ्रमण, स्व लेखा परीक्षण और कार्यवाहियों की जांच तथा सलाहकार सेवाओं जैसे – आन्तरिक संसाधनों हेतु मोबिलाइजेशन तथा आवश्यकता पड़ने पर वैधानिक स्वीकृति हेतु समिति का सहयोग करेगी। आवश्यकता पड़ने पर सलाहकार समिति स्व नियमन के विभिन्न अवयवों पर कार्यशील पत्र भी तैयार करेगी और उनको कहीं प्रस्तुत करने से पहले समन्वयन समिति के साथ उस पर चर्चा, बहस, निर्णय कराकर अन्तिम स्वरूप प्रदान करने हेतु अनुमोदित भी करेगी।

क्षमता अभिवृद्धि

प्रत्येक संघ में, कार्यकारी समिति आधारस्तरीय प्रशिक्षण के लिए आवश्यकता के आधार पर कुछ स्वयं सहायता समूहों की पहचान फैसिलिटेटर के तौर पर करगी। इन फैसिलिटेटरों को पुस्तपालकों के रूप में प्रशिक्षित किया जायेगा, जो स्वयं सहायता समूहों एवं संघों के प्रतिनिधियों को विभिन्न तत्वों जैसे– वार्षिक नियोजन, पुस्तपालन, चुनाव प्रक्रिया आदि पर प्रशिक्षित करेगें। जब फैसिलिटेटर प्रक्षेत्र में प्रशिक्षण आयोजित करेगें, उस समय कुछ स्थानों पर कार्य सहयोग के लिए सलाहकार समूह एवं संघ प्रतिनिधि भ्रमण कर सकते हैं।

प्रक्रिया के दौरान, उप जिला स्तरीय संघ की कार्यकारी समिति भी विभिन्न स्तरों पर वित्तीय विवरण पर समझ बनाने, रिपोर्ट की मानिटरिंग, आन्तरिक एवं बाह्य लेखा परीक्षण, चुनाव प्रक्रिया आदि विविध मुद्दों पर प्रशिक्षित करेगी। इन संघों के कार्यकर्त्ता भी विशिष्ट मुद्दों जैसे – पुस्तपालन, ब्याज गणना, रिपोर्टिंग तंत्र आदि पर प्रशिक्षित होगें।

प्रत्येक संघ में, सदस्यों की शिक्षा के लिए गांव स्तर पर वित्तीय शिक्षा केन्द्र चलाने हेतु फैसिलिटेटर के तौर पर कुछ सदस्यों की पहचान की गयी। ये सुगमीकर्ता वित्तीय शिक्षा केन्द्र को चलाने हेतु विभिन्न पहलुओं पर प्रशिक्षित थे। चलित वित्तीय शिक्षा केन्द्रों को प्रत्येक स्वयं सहायता समूहों के लिए 2–3 दिन चलाया जाता था ताकि विभिन्न पहलुओं, परिवार आधारित आजीविका नियोजन और चयन की प्रक्रिया के सरलीकरण एवं स्वयं सहायता समूह स्तर पर नियोजन जैसे विषयों पर सदस्यों की समझ बढ़ाई जा सके।

गतिशील कोश

सामान्यतः स्वयं सहायता समूह और उनके संघ अपने स्व नियमन का वित्तीय प्रबन्ध अपने वार्षिक अंशदान और सेवा कर के माध्यम से करेंगे। इनका मुख्य केन्द्र बिन्दु आत्म निर्भरता सुनिश्चित करने व बाहरी हस्तक्षेपों से बचने के क्रम में स्व नियमन के लिए होगा। तथापि, संस्थानों को बढ़ाने, विशेषकर क्षमता अभिवृद्धि एवं उचित तंत्र की स्थापना के लिए बाहरी वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

यद्यपि ए0पी0एम0ए0एस0 के स्व नियमन पर इस गतिविधि के माध्यम से, जो कि अभी प्रारम्भिक अवस्था में है, सुगमीकर्ताओं एवं स्वयं महिलाओं को भी बहुत सी सीख मिली है। क्या स्पष्टता होनी चाहिए ताकि भविष्य में स्वयं सहायता समूह और उनके संघ अपने सम्पूर्ण ढांचे के लिए पूरी जिम्मेदारी लेने में सक्षम हो जायें? क्या जोड़ा जाये कि महिलाएं स्वेच्छा से पूरी जिम्मेदारी लेने को तैयार हो जायें और उसे करने में सक्षम भी हो जायें? इसे अतिशीघ्र वास्तविकता में बदलने के लिए आवश्यक है कि सुगमीकर्ता संस्थाएं अपनी सक्रिय भूमिका को कम करें और प्रतिनिधियों को पूर्ण स्वामित्व लेने हेतु विशेषकर सदस्य–नियंत्रण व स्वामित्व बढ़ाने को प्रोत्साहन देने की रूपरेखा के लिए समर्थ बनायें। यद्यपि प्रोत्साहन संस्थाओं के लिए यह भी आवश्यक है कि वे नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण पर केन्द्रित करें और यह भी सुनिश्चित करें कि स्वयं सहायता समूह व उनके संघों की रूपरेखा तैयार करना, क्रियान्वयन व प्रबन्धन सभी महिलाओं के द्वारा ही होगा। तभी उपरोक्त प्रश्नों का हल निकल सकेगा।

■

संदर्भ :

- हंस डॉयटर सेइबल, ए०पी०एम०ए०एस०, इन्श्योरिंग क्वालिटी इन सेल्फ-हेल्थ बैंकिंग एन एसेसमेण्ट, जुलाई, 2006
- मायराडा, पुटिंग इन्स्टीट्यूशन फर्स्ट-इवेन इन माइक्रो फाइनेन्स
- सी०एस०रेड्डी, सेल्फ-हेल्थ ग्रुप्स : ए की स्टोन ऑफ माइक्रोफाइनेन्स इन इण्डिया-वीमेन इम्पावरमेन्ट एण्ड सोशल सिक्योरिटी, ए०पी०एम०ए०एस०
- स्टेट्स ऑफ माइक्रो फाइनेन्स इन इण्डिया- 2009-10

सम्बद्ध उपाध्यक्ष (क्यू०ए०)ए०पी०एम०ए०एस०
प्लॉट नं० 2पी, रोड नं० 2, बंजारा हिल्स
हैदराबाद- 500004
ईमेल : eshggateway.in.srama@apmas.org
Website : www.apmas.org

Finance for Farming
LEISA INDIA, Vol. 12, No.2, Pg. # 17-19, June 2010

चारा समस्या का पुनर्मूल्यांकन

पशुपालन पर आधारित आजीविका वाले लघु किसानों के सामने पशुओं के लिए पर्याप्त चारे की उपलब्धता बनाये रखना एक कठिन चुनौतीपूर्ण कार्य है। परम्परागत रूप से, चारे की उपलब्धता और गुणवत्ता में सुधार के प्रयासों हेतु तकनीक पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, लेकिन चारा अभिनव परियोजना यह प्रदर्शित करती है कि विभिन्न तथ्यों के बीच सुदृढ़ बात–चीत भी बेहतर परिणाम लाती है।

मोना धमंकर

पशुधन लागत का लगभग 70 प्रतिशत चारे पर खर्च होता है और अधिकांशतः विकासशील देशों के गरीब पशुपालकों की आजीविका के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। तथापि, बहुत से कारक इसकी आपूर्ति को बनाये रखने में बाधा पहुंचा रहे हैं। अधिकांश पशुपालक अपने पशुओं के चारे हेतु फसल अवशेषों तथा सामुदायिक अथवा परती जमीनों पर उगने वाली घासों पर निर्भर करते हैं, लेकिन बहुत सी फसलें वर्षा आधारित होती हैं और इनके भरोसे नहीं रहा जा सकता। इसके अतिरिक्त, फसल एवं प्रजातियों को बदलने से तथा भूमि का उपयोग खेती से हटकर अन्य कार्यों के लिए करने की वजह से भी चारे की उपलब्धता घट रही है। एक तो चराई की अधिकता से वैसे ही गोचर भूमि का क्षरण होता है, उस पर अत्यधिक उत्पादन के लिए अधिक सघन इनपुट लगने के बावजूद संकर जानवरों के विकास को बढ़ावा दिये जाने से स्थिति और भी विकट हुई है।

दृष्टिकोण में बदलाव

इन चुनौतियों से निपटने के लिए पारम्परिक समाधान के तौर पर हमेशा ही पोषण की दृष्टि से लाभकारी चारा उत्पादन को बढ़ावा दिया जाता है। सरकार उच्च गुणवत्ता वाले बीज प्रजातियों और नयी तकनीकों के विकास के माध्यम से इस तरीके का समर्थन करती है। यद्यपि इस कार्य की संभावनाएं बड़े पैमाने पर काम करने वाले किसानों के लिए हो सकती हैं। लघु व भूमिहीन किसान अपने संसाधनों से इन नयी तकनीकों को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। सौभाग्य से, अन्तर्राष्ट्रीय पशुधन अनुसंधान संस्थान ने इस मुद्दे पर उनके नजरिये से देखने का फैसला किया और पाया कि चारा उपलब्धता से सम्बन्धित समस्याओं को कम करने के लिए उपयुक्त तकनीक उपयोग के साथ उनके पारम्परिक ज्ञान को शामिल करना एक बेहतर तरीका है। परिणामस्वरूप, अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए ब्रिटेन द्वारा भारत और नाइजीरिया में एक परियोजना क्रियान्वित करने हेतु अनुदान दिया गया था। चारा नवशोध परियोजना के बैनर तले इस परियोजना क्रियान्वयन से निकल कर आया कि दृष्टिकोण में बदलाव के सार्थक परिणाम होते हैं।

भारत और नाइजीरिया में प्रक्षेत्र आधारित परीक्षण

वर्ष 2003 में बन्द हुए परियोजना के प्रथम चरण में, चारा और खाद्य व चारा की दोहरी उपयोगिता वाली फसलों की नयी प्रजातियों का चिन्हीकरण कर अपनी सहयोगी संस्थाओं (सरकारी शोध संस्थान एवं स्वैच्छिक संगठनों) को उत्पादन वृद्धि की दृष्टि से ये सूचनाएं दी गयीं। प्रत्येक सहयोगी संस्थान ने कुछ सामान्य मापदण्डों के आधार पर परियोजना क्रियान्वयन प्रारम्भ किया, साथ ही स्वयं अपने कार्यक्षेत्र के सन्दर्भों, आवश्यकताओं एवं जनादेश को भी ध्यान में रखा। भारत और नाइजीरिया दोनों में स्पष्ट रूप से यह निकल कर आया कि बीज उत्पादन, आपूर्ति और वृक्षारोपण की कम जीवितता से सम्बन्धित मुद्दों पर काम करने से पहले उचित तकनीक को नियोजित किया जाना चाहिए। इससे यह भी प्रदर्शित होता है कि संस्थागत और नीतिगत क्षेत्रों में भी नवाचार की आवश्यकता से परिचित कराने के लिए सहभागी पद्धति से किया गया शोध उपयोगी होता है। तकनीक के प्रभावी विकास की यह मांग है कि नये स्थानीय नेटवर्क, कार्यक्रम, प्रक्रिया, और नीतियां सभी नवाचार व समवर्ती निवेश के लिए खुली होनी चाहिए।

चारे का जंगल

वाटरशेड आर्गेनाइजेशन ट्रस्ट द्वारा अपनी परियोजना के अन्तर्गत आच्छादित कुछ भारतीय गांवों में एक घास को चिन्हित किया गया कि गांव में चारे के लिए इनकी खेती करना उपयुक्त होगा। वाटरशेड आर्गेनाइजेशन ट्रस्ट के प्रतिनिधि, वन विभाग, महात्मा फूले कृषि विश्वविद्यालय, ग्राम्य विकास विभाग समिति और संयुक्त वन प्रबन्धन समिति ने कार्य का बंटवारा किया, जिसमें बीज उपलब्धता से लेकर उसकी विशेषताओं के बारे में सूचनाओं को देना भी था। वन विभाग ने सयुंक्त वन प्रबन्धन समिति से अलग जाकर एक तंत्र तैयार किया ताकि चारा उत्पादन के लिए वन भूमि पर किसानों की पहुंच बढ़ सके। इसमें यह तय किया गया कि भूमिहीन किसानों को वन भूमि पर चारा उत्पादन के लिए प्राथमिकता दी जायेगी। इसके बाद उनको प्राथमिकता दी जायेगी जिनके पास चारा की खेती के लिए पर्याप्त भूमि नहीं है। यह असाधारण है कि वन विभाग चारे के मुद्दे पर इतनी रूचि ले रहा है और किसानों को अपनी भूमि उपयोग करने के लिए अनुमति दे रहा है।

प्रभावी नवाचार में सक्षमता

परियोजना का द्वितीय चरण, जो वर्ष 2006 तक चला, इस बात पर केन्द्रित था कि लोगों को कैसे यह महसूस कराया जाये कि यह नवाचार सबसे बेहतर है। भारत और नाइजीरिया में देशस्तरीय क्षेत्र विशेषता के आधार पर पांच संस्थाओं की पहचान की गयी और मुख्य सहयोगी संस्थाओं के साथ परियोजना शुरू की गयी। इसमें सरकारी, अर्ध सरकारी और गैर सरकारी सभी संस्थाएं शामिल थीं। इन सभी ने पशुधन सम्बन्धित परियोजना प्रारम्भ की। प्रक्रिया को फैसिलिटेट करने के लिए यह सुनिश्चित किया गया कि प्रत्येक स्थान के लिए एक सन्दर्भ विशेष नवाचार थीम का चयन किया जाये। उदाहरण के तौर पर, भारत में गैर सरकारी संगठन ''फाउण्डेशन फॉर इकोलॉजी सिक्योरिटी'' ने कुछ चुनिंदा मार्गों पर दूध का विपणन अधिशेष बढ़ाने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया जबकि नाइजीरियाई गैर सरकारी संगठन ''द न्याय, विकास और शान्ति आयोग'' ने बड़े पैमाने पर बकरी पालन को बढ़ाकर उसके

अर्ध वाणिज्यिक स्तर की बड़े पैमाने पर संभावनाएं देखते हुए बकरी पालन को बढ़ाने पर जोर दिया।

इन संयुक्त प्रयासों से निकल कर आया कि अगर संगठनों के बीच विस्तृत चर्चा श्रृंखला को बढ़ावा दिया जाये तो चारा और पशुधन से सम्बन्धित जानकारी को मजबूत किया जा सकता है और तैयार जानकारियों के वितरण, आदान–प्रदान एवं प्रयोग करने के माध्यम से संस्थागत और नीतिगत परिवर्तनों में भी आवश्यक बदलाव हेतु यह चर्चा श्रृंखला नेतृत्व कर सकती है।

प्रतिफल के लिए प्रयास

इन स्थानों पर जो मंच स्थापित किये गये, उनमें पशुपालक सहित सार्वजनिक, व्यक्तिगत तथा नागर समाज संगठन के प्रतिनिधि शामिल थे। संयुक्त कार्य योजना में विभिन्न स्थलों पर अलग–अलग कार्य जैसे– पशुचारा के साथ जंगलों में बीज की बुवाई और पशुओं का टीकाकरण कैम्प आयोजित किया गया। समय–समय पर उनकी समीक्षा तथा निगरानी और मंच पर उसके प्रतिफल सभी सदस्यों के द्वारा परियोजना के प्रमुख घटकों को प्रदान किया जाता था। कई प्रकार के अध्ययन भी किये गये ताकि शोधकर्ताओं व नीति नियोजकों एवं संगठनों के मध्य एक उचित समन्वयन बन सके। दोनों देशों में राष्ट्रीय स्तर पर एक चारा अन्वेशण नीति क्रियान्वयन समूह भी बनाया गया, जिसके द्वारा उपरोक्त सुविधाओं को मुहैया कराया जा सके। इस क्रियान्वयन समूह में पशुपालन विभाग, दुग्ध उत्पादन तथा ग्रामीण विकास विभाग के वरिष्ठ सरकारी प्रतिनिधि, स्वयंसेवी संगठनों के प्रमुख, दुग्ध सहकारी समितियों के निदेशक, कृषि एवं चारा शोध संस्थानों के वैज्ञानिकों को शामिल किया गया था।

इकीरे में बकरी पालन को विस्तारित करना

दक्षिणी नाइजीरिया के इकीरे क्षेत्र में किसानों ने आपदा से निपटने के लिए बचत अथवा और बीमा के तौर पर अधिकांशतः बकरियां पाल रखी हैं। जब बकरी पालन आजीविका के तौर पर की जाती है तब चारा कोई मुद्दा नहीं था। इन बकरियों की देख–रेख अधिकांशतः महिलाओं के द्वारा की जाती थी, जिसे वे अपने घरेलू कार्यों के साथ–साथ निपटाती थी और ऐसे में उनके लिए आसान था कि वे घर से उबरे संसाधनों से ही बकरियों की खाद्य आपूर्ति करती थीं। परम्परागत तौर पर बकरी पालने वाले किसानों की पहुंच सीधे बाजार तक न होने के कारण उनकी निर्भरता बिचौलियों पर थी और उनका शोषण होता था। ये बिचौलिये पूर्व निर्धारित सीमाओं में स्वतंत्र रूप से काम करते हैं। किसानों के साथ चर्चा में यह भी पाया गया कि वे यह भली–भाँति जानते हैं कि बकरी पालन से त्यौहारों के दिनों में अतिरिक्त आमदनी कमाई जा सकती है। हांलांकि सही अवसर एवं स्थान न मिल पाने के कारण वे इस गतिविधि को गम्भीरतापूर्वक उन्नत ढंग से नहीं अपना पा रहे हैं। निरन्तर चर्चा के दौरान यह भी निकलकर आया कि किसान अधिक से अधिक सुव्यवस्थित तरीके से व्यापारिक उद्देश्य से बकरी पालन करना चाहते हैं। वे सिर्फ यह नहीं चाहते कि उन्हें वर्ष भर उचित रूप से चारा उपलब्धता सुनिश्चित करने का आश्वासन दिया जाये, वरन् वे यह भी चाहते हैं कि उनके जानवरों की सुरक्षा हो सके और इसके लिए उचित मंच बन सके। इसी क्रम में, तकनीक सम्बन्धित समन्वयन और संस्थागत हस्तक्षेप इन प्रत्येक कारकों को चाहिए ताकि व्यक्तिगत और/अथवा संस्थागत के लिए इनको प्रासंगिक बनाया जा सके।

फोटो: जोनाथन डेविस

सुव्यवस्थित बकरी पालन हेतु वर्ष भर चारा उपलब्धता आवश्यक है।

कार्य की दिशा

चारा नवशोध परियोजना के अन्तर्गत परम्परागत तकनीक को परिवर्तित कर ऐसे उपागमों को क्रियाशील बनाना था, जिससे चारा अभाव की समस्या को अपेक्षाकृत अधिक सुसंगत ढंग से शोधों के माध्यम से पूर्ण करने के लिए विभिन्न संस्थाओं का एक मंच बनाया जा सके। परियोजना के प्रारम्भ में एक सामाजिक–आर्थिक आधारभूत सर्वेक्षण को सम्पादित किया गया, प्रभाव के आकलन के लिए एक दूसरा सर्वेक्षण होना शेष है। यद्यपि यह कहना बहुत ही जल्दबाजी होगी कि यह शोध उपागम इस समस्या के समाधान के लिए बहुत उपयुक्त होगा। परियोजना में लगे हुए लोगों को यह दिखा देगा कि कैसे निर्माण तथा मंच प्रक्रिया जानवरों के ऊपर निर्भर रहने वाले किसानों को लाभदायी बना सकती है। शोध उपागम यह भी परिलक्षित कराता है कि केवल चारा की उपलब्धि तक ही बाधाएं सीमित नहीं हैं, वरन् इन्हें अन्य ऐसी समस्याओं विशेषकर फसल स्तर, पशुओं के मूल्य, विपणन, उनकी सेवा की उपलब्धता आदि के सन्दर्भ में भी देखा जाना चाहिए।

सीखने की प्रयोगशालाएं

एक कार्यशोध परियोजना के रूप में यह परियोजना चारा शोध योजना मंच को स्थापित करने तथा उन्हें प्रभावशाली सीखने की प्रयोगशाला बनाने के लिए पूर्णतः सफल हुआ है। लेकिन अभी आगे और भी इसमें सुधार की अपेक्षा है। नवशोध मंच का निर्माण फसल–पशु मूल्य श्रृंखला और रणनीति को इस उद्देश्य से बनाया जाना चाहिए कि वह शोध महिला एवं गरीबों के लिए अधिक अनुकूल हो सके। समाज के चर्चा का विषय बनने के पूर्व इससे प्राप्त सीख में निरन्तरता होने के साथ वृद्धिमान की क्षमता भी होनी चाहिए। लेकिन यह भी तथ्य सत्य है कि शीर्षस्थ संगठन जैसे भारतीय राष्ट्रीय दुग्ध विकास परिषद ने भी खाद्य शोध नीति कार्य समूह को प्रायोजित कर इसको उत्साहित किया है। यांत्रिकी समर्थित तकनीक से शोध जनित उपागम एक बहुत ही अच्छी सोच है, लेकिन हमें यह आवश्यकता है कि अधिक से अधिक साक्ष्यों को जुटाकर नीति नियोजकों के सम्मुख प्रस्तुत करें और उन्हें पूर्ण हृदय से इस बात के लिए परिषद में लाने का प्रयास हो। समन्वयन बन सके। दोनों देशों में राष्ट्रीय स्तर पर एक चारा अन्वेशण नीति क्रियान्वयन समूह भी

चारा नवशोध परियोजना : एक कहानी

चारा नवशोध परियोजना की नवशोध केन्द्रित रणनीति के कुछ बहुत ही रूचिकर परिणाम रहे। इस परियोजना की कुछ प्राप्ति निम्नवत् हैं –

- भारत में, गांव दुग्ध सहकारी समितियां व्यापारिक तौर पर कार्य करने लगी हैं। जब भी बाजार में दूध अधिक होता है, वे खरीद लेती हैं। कुछ किसान चारा आपूर्ति और भुगतान वापसी हेतु इन सहकारी समितियों से सम्बद्ध हैं।
- भारत और नाइजीरिया दोनों में नई और अनौपचारिक सहभागिता मजबूत हुई है। इकीरे में बकरी विक्रेता संघ के प्रतिनिधि बकरी पालक किसानों को बकरी पालन और उनके रख–रखाव, खान–पान आदि से सम्बन्धित जानकारियां उपलब्ध कराते रहते हैं। ''द न्याय विकास व शान्ति आयोग'' नाइजीरियन पशु शोध संस्थान के साथ मिलकर स्थानीय सेवा प्रदाताओं को प्रशिक्षण देती है और बकरी पालक किसानों को टीकाकरण सेवाएं भी उपलब्ध कराती है।
- समुदाय आधारित संस्थाएं सरकार के सहयोग से स्वास्थ्य शिविर आयोजित करने की पहल कर रही हैं ताकि टीकाकरण आच्छादित क्षेत्र का विस्तार हो सके।
- दक्षिणी नाइजीरिया के लिए उचित उन्नत बकरी नस्ल पर शोध करने हेतु एक मांग उभरकर आयी है।
- रोगो, नाइजीरिया में एक सघन व अधिक क्षमतावान नेटवर्क की स्थापना हुई है।
- भारत में, सरकारी विभाग और प्रशासन के साथ नयी चारा उत्पादन गतिविधियां उभरकर आयी हैं।
- बहुत से चारा सम्बन्धित मुद्दों पर प्रशिक्षण आयोजित करने हेतु लाइजनिंग व समन्वयन के रूप में नीति निर्माताओं के कंधों पर नयी जिम्मेदारियां आ गयी हैं।
- भारत की ''फाउण्डेशन फॉर इकोलॉजी सिक्योरिटी'' परियोजना से प्राप्त परिणामों से प्रभावित है कि संगठनों के नेटवर्क के प्रयोग से परियोजना का विस्तार हो रहा है और इसी तरह की अन्य दूसरी परियोजनाओं के लिए जमीन भी तैयार हो रही है।
- परियोजना से सीख के तौर पर, भारतीय योजना आयोग ने राष्ट्रीय पशुधन योजना पर चर्चा में हिस्सेदारी करने हेतु एक प्रतिनिधि के तौर पर बुलाया है।

बनाया गया, जिसके द्वारा उपरोक्त सुविधाओं को मुहैया कराया जा सके। इस क्रियान्वयन समूह में पशुपालन विभाग, दुग्ध उत्पादन तथा ग्रामीण विकास विभाग के वरिष्ठ सरकारी प्रतिनिधि, स्वयंसेवी संगठनों के प्रमुख, दुग्ध सहकारी समितियों के निदेशक, कृषि एवं चारा शोध संस्थानों के वैज्ञानिकों को शामिल किया गया था।

■

मोना धर्मकर (mona.dhamankar@gmail.com) एक स्वतंत्र विकास सलाहकार हैं जो पशुधन आधारित आजीविका पर कार्य कर रही हैं और नीदरलैण्ड में वॉशिंगटन यूनिवर्सिटी में पी० एच०डी० छात्रा हैं।

Livestock for sustainable livelihoods
LEISA INDIA, Volume 12, No. 1, Pg # 11 -13, March 2010